भारत की खोज

कक्षा 8 के लिए

हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

भारत की खोज

जवाहरलाल नेहरू

की पुस्तक *भारत की खोज* का संक्षिप्त रूप

कक्षा 8 के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

© NCERT
not to be republished

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 2008 चैत्र 1928

पुनर्मुद्रण
दिसंबर 2008 मार्गशीर्ष 1930
जनवरी 2010 माघ 1931
नवंबर 2010 अग्रहायण 1932
जनवरी 2012 माघ 1933
अक्तूबर 2012 आश्विन 1934
जनवरी 2014 अग्रहायण 1935
दिसंबर 2014 पौष 1936
दिसंबर 2016 पौष 1938
दिसंबर 2017 अग्रहायण 1939

PD 400T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2008

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सन् 1996 में *भारत की खोज* का संक्षिप्त संस्करण अपनी **अतिरिक्त पठन योजना** के अंतर्गत प्रकाशित किया था। अब यह अपेक्षित संपादन के पश्चात निर्धारित पाठ्यक्रम में पूरक पुस्तक के रूप में समाहित की गई है।

₹ 55.00

एन.सी.ई.आर.टी. वॉटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा विद्या प्रकाशन मन्दिर (प्रा.) लि., विद्या इस्टेट, बागपत रोड, मेरठ-250002 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-81-7450-832-4

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : *अरुण चितकारा*
संपादक : *मीरा कांत*
उत्पादन सहायक : *ओम प्रकाश*

सज्जा एवं आवरण
जोएल गिल

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित शिक्षा व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभव पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन कर सकेंगे। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

यह उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी

© NCERT not to be republished

प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए परिषद् उनके प्राचार्यों एवं उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। परिषद् माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
30 नवंबर 2007

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

अनुवाद, संक्षेपण और संपादन

निर्मला जैन, *पूर्व अध्यक्ष,* हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदस्य

अक्षय कुमार दीक्षित, *हिंदी शिक्षक,* निगम प्राथमिक विद्यालय, राजपुर, नयी दिल्ली

प्रेमपाल शर्मा, 96 कला विहार अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, नयी दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

नरेश कोहली, *प्रवक्ता,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

परिषद् जवाहरलाल नेहरू स्मारक निधि के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है, जिसने इस पुस्तक को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक के निर्माण में तकनीकी सहयोग के लिए हम कंप्यूटर स्टेशन (भाषा शिक्षा विभाग) के *प्रभारी* परशराम कौशिक, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* कमलेश आर्य, अरविंद शर्मा एवं विजय कुमार, *कॉपी एडीटर* पूजा नेगी एवं मनोज मोहन और *प्रूफ़ रीडर* दुर्गा देवी एवं कंचन शर्मा का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1]**[संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य]** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2]**[राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

© NCERT not to be republished

अनुवाद, संक्षेपण और संपादन

जवाहरलाल नेहरू ने तीन कालजयी कृतियों की रचना की – *विश्व-इतिहास की झलकियाँ*, *आत्मकथा* और *भारत की खोज*। इनमें से पहली कृति की रचना यद्यपि इंदिरा गांधी (तब इंदिरा गांधी नेहरू) के लिए की गई थी परंतु उससे भारत ही नहीं विश्व के युवा मानस को मानव का इतिहास समझने की दृष्टि मिली। उसी तरह जैसे उनकी *आत्मकथा* व्यक्ति-विशेष की जीवन-कथा मात्र नहीं है, बल्कि उससे नए भारत की मानसिक बनावट को समझने की अंतर्दृष्टि मिलती है।

भारत की खोज की प्रस्तावना में इंदिरा गांधी ने कहा है कि – "इस रचना में भारत के राष्ट्रीय-चरित्र के स्रोतों की गहरी पड़ताल की गई है।"

भारत की खोज की रचना 1944 में अप्रैल-सितंबर के बीच अहमदनगर के किले की जेल में हुई। यह पुस्तक 9 अगस्त 1942 से 28 मार्च 1945 के बीच के अपने साथियों और सहबंदियों को समर्पित की गई है। तिथियों का यह चुनाव संयोग भर नहीं है बल्कि उस दौर की घटनाओं के प्रति नेहरू के गहरे सरोकार की ओर इशारा करता है।

पुस्तक की भूमिका में नेहरू ने कारावास के अपने इन साथियों को बहुत सम्मान से स्मरण किया है। कारावास के जीवन की कठिनाइयों और कष्टों के बावजूद उन्होंने असामान्य रूप से योग्य और सुसंस्कृत इन व्यक्तियों के साहचर्य को अपना सौभाग्य माना। इस संदर्भ में नेहरू ने अहमदनगर के कारावास में अपने ग्यारह साथियों की चर्चा की है। इन लोगों का साथ उन्हें इस मायने में बहुत दिलचस्प लगता था कि वे केवल राजनीतिक माहौल के ही नहीं, भारतीय विद्वत्ता के, प्राचीन और नवीन भारत के तथा तत्कालीन भारतीय जीवन के सभी पक्षों के प्रतिनिधि थे। उनका संबंध भारत की लगभग सभी जीवित और प्राचीन भाषाओं से था और उनकी विद्वत्ता का स्तर बहुत ऊँचा था। प्राचीन भाषाओं में संस्कृत और पाली के साथ अरबी एवं फ़ारसी और आधुनिक भाषाओं में हिंदी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलुगु, सिंधी एवं उड़िया शामिल थीं।

नेहरू ने लिखा है – "मेरे सामने ग्रहण करने के लिए यह तमाम दौलत थी और एकमात्र बाधा उससे लाभान्वित होने की मेरी सीमित क्षमता थी।"

अपने साथियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए नेहरू ने मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के प्रभावी व्यक्तित्व और गोविंद बल्लभ पंत, नरेंद्र देव और आसफ़ अली का विशेष रूप से उल्लेख किया है।

इतिहास और संस्कृति के विभिन्न पक्षों के बारे में इन बंदी साथियों से जो अनगिनत बहसें और बातचीत हुईं उससे नेहरू को अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने में मदद मिली। इस ऋण को भी उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है।

मूल रचना के बारे में यह खुलासा इसलिए ज़रूरी था ताकि रचनाकार के केंद्रीय सरोकार और दृष्टिकोण के साथ संपादन-नीति को समझने में आसानी हो। इस रचना में भारत के इतिहास को घटना-क्रम में नहीं, सांस्कृतिक यात्रा के रूप में देखने-समझने का प्रयास है। अतीत का यह 'भार' रचनाकार की विरासत है। व्यक्ति की नहीं पूरी मानव जाति की, जिसे उसने हज़ारों हज़ार वर्षों की काल-यात्रा में जिया, झेला और धारण किया है। इस कहानी का स्रोत नेहरू के मन की वह भीतरी चित्र-गैलरी है जिसका निर्माण अनगिनत वैयक्तिक संपर्कों से हुआ है। इसीलिए वैयक्तिक तत्व और प्रसंग इसमें अनुपस्थित तो नहीं हो सके, पर वे रचनाकार के मूल मंतव्य का अनिवार्य हिस्सा भी नहीं हैं।

मूल का संपादन करने की प्रक्रिया में हमारा केंद्रीय सरोकार यही रहा है कि रचना का यह अनिवार्य कथ्य सुरक्षित रहे। चयन करते हुए दो तरह के प्रसंगों का समावेश नहीं किया गया – (1) नितांत पारिवारिक घटनाएँ और (2) दीर्घ ऐतिहासिक ब्यौरे।

संपादन करते हुए सर्वोपरि महत्त्व *भारत की खोज* के इस संक्षिप्त अनूदित संस्करण के संभावित पाठक वर्ग के स्तर और अपेक्षा को दिया गया है।

यह अनुवाद पठनीय, बोधगम्य और ज्ञानवर्धक हो, पढ़ने के क्रम में संपादन के बावजूद निरंतरता और प्रवाह बना रहे, इसके सुधी पाठक इसकी मूल संवेदना को अखंड रूप में ग्रहण कर सकें, यही हमारा प्रयास रहा है। आशा है पाठक इसे ऐसा ही पाएँगे।

निर्मला जैन

© NCERT not to be republished

विषय-सूची

आमुख *iii*

अनुवाद, संक्षेपण और संपादन *vii*

1. अहमदनगर का किला **1–3**
- अतीत का भार
- अतीत का दबाव

2. तलाश **4–16**
- भारत के अतीत की झाँकी
- भारत की शक्ति और सीमा
- भारत की तलाश
- भारत माता
- भारत की विविधता और एकता
- जन संस्कृति

3. सिंधु घाटी सभ्यता **17–45**
- आर्यों का आना
- प्राचीनतम अभिलेख, धर्म-ग्रंथ और पुराण
- वेद
- भारतीय संस्कृति की निरंतरता
- उपनिषद्
- व्यक्तिवादी दर्शन के लाभ और हानियाँ
- भौतिकवाद
- महाकाव्य, इतिहास, परंपरा और मिथक
- *महाभारत*
- *भगवद्गीता*
- प्राचीन भारत में जीवन और कर्म

© NCERT not to be republished

- महावीर और बुद्ध – वर्ण व्यवस्था
- बुद्ध की शिक्षा
- बुद्ध-कथा
- चंद्रगुप्त और चाणक्य – मौर्य साम्राज्य की स्थापना
- अशोक

4. युगों का दौर 46–71

- गुप्त शासन में राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद
- दक्षिण भारत
- शांतिपूर्ण विकास और युद्ध के तरीके
- प्रगति बनाम सुरक्षा
- भारत का प्राचीन रंगमंच
- संस्कृत भाषा की जीवंतता और स्थायित्व
- दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश और संस्कृति
- विदेशों पर भारतीय कला का प्रभाव
- भारत का विदेशी व्यापार
- प्राचीन भारत में गणितशास्त्र
- विकास और ह्रास

5. नयी समस्याएँ 72–91

- अरब और मंगोल
- महमूद गज़नवी और अफ़गान
- समन्वय और मिली-जुली संस्कृति का विकास
  कबीर, गुरु नानक और अमीर खुसरो
- बाबर और अकबर – भारतीयकरण की प्रक्रिया
- यांत्रिक उन्नति और रचनात्मक शक्ति में एशिया
  और यूरोप के बीच अंतर
- औरंगज़ेब ने उल्टी गंगा बहाई –
  हिंदू राष्ट्रवाद का उभार – शिवाजी

not to be republished © NCERT

- प्रभुत्व के लिए मराठों और अंग्रेज़ों के बीच संघर्ष अंग्रेज़ों की विजय
- रणजीत सिंह और जय सिंह
- भारत की आर्थिक पृष्ठभूमि – इंग्लैंड के दो रूप

6. **अंतिम दौर – एक** 92–105
- भारत राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से पहली बार एक अन्य देश का पुछल्ला बनता है
- भारत में ब्रिटिश शासन के अंतर्विरोध राममोहन राय – बंगाल में अंग्रेज़ी शिक्षा और समाचार पत्र
- सन् 1857 की महान क्रांति – जातीयतावाद
- हिंदुओं और मुसलमानों में सुधारवादी और दूसरे आंदोलन
- तिलक और गोखले

7. **अंतिम दौर – दो** 106–114
- राष्ट्रीयता बनाम साम्राज्यवाद – मध्य वर्ग की बेबसी – गांधी का आगमन
- गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस सक्रिय
- अल्पसंख्यकों की समस्या – मुस्लिम लीग – मोहम्मद अली जिन्ना

8. **तनाव** 115–116
- चुनौती – 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव

9. **दो पृष्ठभूमियाँ – भारतीय और अंग्रेज़ी** 117–120
- व्यापक उथल-पुथल और उसका दमन
- भारत की बीमारी – अकाल
- भारत की सजीव सामर्थ्य

उपसंहार 121–122

शब्दार्थ एवं टिप्पणी 123–125

प्रश्न-अभ्यास 126–130

© NCERT not to be republished

जवाहरलाल नेहरू

(1889–1964)

सच्चे अर्थों में नेहरू जी आधुनिक भारत के निर्माता हैं। महात्मा गांधी की अगुआई में उन्होंने आज़ादी की लड़ाई में सक्रिय भाग लिया। सन् 1947 में अंग्रेज़ों की गुलामी से देश आज़ाद हुआ और वे 1947 से 1964 तक प्रधानमंत्री रहे। भारत के अलावा उन्हें दुनियाभर में एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष, मानववादी राजनीतिज्ञ के रूप में जाना जाता है जिन्होंने विश्वशांति और समाजवादी आदर्शों के लिए जीवन–भर आवाज़ बुलंद की।

एक महान राजनेता के साथ–साथ उनकी प्रसिद्धि एक लेखक के रूप में भी सर्वविदित है। उनकी पुस्तकों–*विश्व इतिहास की झलकियाँ, आत्मकथा* और *भारत की खोज* को क्लासिक का दर्जा हासिल है।

भारत की खोज उनकी अंग्रेज़ी में लिखी पुस्तक *डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया* का हिंदी अनुवाद है। इसे उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में 1944 में अहमदनगर के किले में अपने पाँच महीने के कारावास के दिनों में लिखा था। पुस्तक रूप में यह प्रकाशित हुई 1946 में। इस पुस्तक में नेहरू जी ने सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर भारत की आज़ादी तक विकसित हुई भारत की बहुविध समृद्ध संस्कृति, धर्म और जटिल अतीत को वैज्ञानिक दृष्टि से विलक्षण भाषा शैली में बयान किया है। अलबर्ट आइंस्टाइन के शब्दों में–"इस पुस्तक से एक महान देश के गौरवशाली अतीत और आध्यात्मिक परंपराओं की समझ हासिल होती है।"

छह–सात दशक पहले लिखी गई यह पुस्तक आज भी उन सभी के लिए प्रासंगिक है जो इस महादेश के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास को एक ऐतिहासिक क्रमबद्धता में जानना, समझना चाहते हैं।

© NCERT not to be republished

अध्याय 1

अहमदनगर का किला

अहमदनगर का किला, 13 अप्रैल 1944

यह मेरी नौवीं जेलयात्रा थी। हमें यहाँ आए बीस महीने से भी अधिक समय हो चुका था। जब हम यहाँ पहुँचे तो अँधियारे आकाश में झिलमिलाते दूज के चाँद ने हमारा स्वागत किया। शुक्ल-पक्ष शुरू हो चुका था। तब से हर बार जब नया चाँद उगता है तो जैसे मुझे याद दिला जाता है कि मेरे कारावास का एक महीना और बीत गया। चाँद मेरे बंदी जीवन का स्थायी सहचर रहा है। वही मुझे इस बात की याद दिलाता है कि अँधेरे के बाद उजाला होता है।

© NCERT not to be republished

सन् 1953 में जवाहरलाल नेहरू ने अहमदनगर किले की पुनः यात्रा की

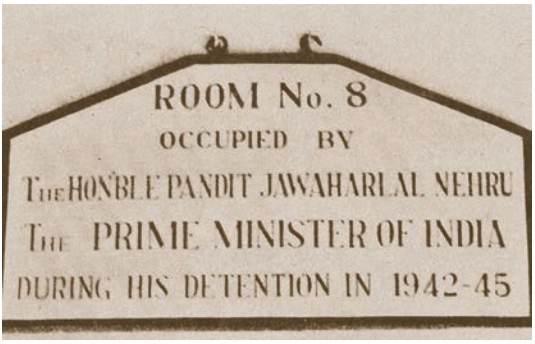

अहमदनगर किले का वह कक्ष जहाँ 1942–45 में जवाहरलाल नेहरू को रखा गया

अतीत का भार

दूसरी जेलों की तरह, यहाँ अहमदनगर के किले में भी मैंने बागवानी करना शुरू कर दिया। मैं रोज़ कई घंटे, तपती धूप में भी फूलों के लिए क्यारियाँ बनाने में बिताने लगा। मिट्टी बहुत खराब थी—पथरीली और पुराने मलबे और अवशेषों से भरी हुई। चूँकि यह इतिहास-स्थल है इसलिए अतीत में इसने कई युद्ध और राजमहलों की दुरभिसंधियाँ देखी हैं। यहाँ का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। घटनाओं की दृष्टि से इसकी कोई विशेष अहमियत भी नहीं है। पर इससे जुड़ी एक घटना, आज भी याद की जाती है। यह घटना है चाँद बीबी नाम की एक सुंदर महिला के साहस की कहानी, जिसने इस किले की रक्षा के लिए अकबर की शाही सेना के विरुद्ध, हाथ में तलवार उठाकर अपनी सेना का नेतृत्व किया। पर अंत में उसकी हत्या उसके अपने ही एक आदमी के हाथों हुई।

खुदाई के दौरान हमें ज़मीन की सतह के बहुत नीचे दबे हुए प्राचीन दीवारों के हिस्से और कुछ गुंबदों और इमारतों के ऊपरी हिस्से मिले। हम बहुत दूर नहीं जा सके क्योंकि न तो अधिकारियों से इसकी मंज़ूरी मिली और न ही हमारे पास इस काम को जारी रखने के साधन थे। अब मैंने कुदाल छोड़कर हाथ में कलम उठा ली है। पर मैं जब तक आज़ाद नहीं हो जाता और कर्म के माध्यम से वर्तमान को अपने अनुभव का हिस्सा नहीं

© NCERT not to be republished

बना लेता, मैं उसके बारे में नहीं लिख सकता। न ही पैगंबर की भूमिका अख्तियार कर मैं फ़िलहाल भविष्य के बारे में लिख सकता हूँ। बचा रहता है अतीत, पर मैं उसके बारे में भी किसी इतिहासकार या विद्वान की तरह विद्वत्तापूर्ण शैली में नहीं लिख सकता। मैं पहले की ही तरह, अपने आज के विचारों और क्रियाकलापों के साथ संबंध स्थापित करके ही उसके बारे में कुछ लिख सकता हूँ। गेटे ने एक बार कहा था कि इस तरह का इतिहास लेखन अतीत के भारी बोझ से एक सीमा तक राहत दिलाता है।

अतीत का दबाव

दबाव, भला हो या बुरा, दोनों तरह अभिभूत करता है। कभी-कभी यह दबाव दमघोंटू होता है–खास तौर पर उन लोगों के लिए जिनकी जड़ें बहुत पुरानी सभ्यताओं में होती हैं–मसलन भारत और चीन की सभ्यताएँ।

आखिर मेरी विरासत क्या है? मैं किन बातों का उत्तराधिकारी हूँ? क्या उन सबका जिसे मानवता ने दसियों हज़ारों साल के दौरान हासिल किया। उसकी विजयों के उल्लास का, उसकी पराजयों की दुखद यंत्रणा का, मानव के उन हैरतअंगेज़ साहसिक कार्यों का जिनकी शुरुआत युगों पहले हुई और जो अब भी जारी हैं और हमें आकर्षित करती हैं। मैं इस सबका वारिस हूँ, साथ ही उस सबका भी जिसमें पूरी मानव जाति की साझेदारी है। हम भारतवासियों की विरासत में एक खास बात है, जो अनोखी नहीं है, क्योंकि कोई व्यक्ति औरों से एकदम अलग नहीं होता। अलबत्ता एक बात हम लोगों पर विशेष रूप से लागू होती है, जो हमारे रक्त, मांस और अस्थियों में समाई है। इसी विशेषता से हमारा वर्तमान रूप बना है और हमारा भावी रूप बनेगा।

इसी विशिष्ट विरासत का विचार और वर्तमान पर इसे लागू करने की बात एक लंबे अरसे से मेरे मन में घर किए है। मैं इसी के बारे में लिखना चाहता हूँ। विषय की कठिनाई और जटिलता मुझे भयभीत करती है। मुझे लगता है कि मैं सतही तौर पर इसका स्पर्श ही कर सकता हूँ।

not to be republished © NCERT

तलाश

भारत के अतीत की झाँकी

बीते हुए सालों में मेरे मन में भारत ही भारत रहा है। इस बीच मैं बराबर उसे समझने और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने की कोशिश करता रहा हूँ। मैंने बचपन की ओर लौटकर याद करने की कोशिश की कि मैं तब कैसा महसूस करता था, मेरे मन में इस अवधारणा ने कैसा धुँधला रूप ले लिया था और मेरे ताज़ा अनुभव ने उसे कैसे सँवारा था।

आखिर यह भारत है क्या? अतीत में यह किस विशेषता का प्रतिनिधित्व करता था? उसने अपनी प्राचीन शक्ति को कैसे खो दिया? क्या उसने इस शक्ति को पूरी तरह खो दिया है? विशाल जनसंख्या का बसेरा होने के अलावा क्या आज उसके पास ऐसा कुछ बचा है जिसे जानदार कहा जा सके? आधुनिक विश्व से उसका तालमेल किस रूप में बैठता है?

भारत मेरे खून में रचा-बसा था। इसके बावजूद मैंने उसे एक बाहरी आलोचक की नज़र से देखना शुरू किया। ऐसा आलोचक जो वर्तमान के साथ-साथ अतीत के बहुत से अवशेषों को, जिन्हें उसने देखा था—नापसंद करता था। एक हद तक मैं उस तक पश्चिम के रास्ते से होकर पहुँचा था। मैंने उसे उसी भाव से देखा जैसे संभवतः किसी पश्चिमी मित्र ने देखा होता। मेरे भीतर शंकाएँ सिर उठा रही थीं। क्या मैंने भारत को जान लिया था? मैं, जो उसके अतीत की विरासत के बड़े हिस्से को खारिज करने का साहस कर रहा था। लेकिन अगर भारत के पास वह कुछ नहीं होता जो बहुत जीवंत और टिकाऊ रहा है, वह बहुत कुछ जो सार्थक है, तो भारत का वजूद उस रूप में नहीं होता जैसा आज है और वह हज़ारों वर्ष तक अपने 'सभ्य' अस्तित्व की पहचान इस रूप में कदापि बनाए नहीं रख सकता था। वह 'विशेष' तत्व आखिर क्या था?

© NCERT not to be republished

मैं भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित सिंधु घाटी में मोहनजोदड़ो के एक टीले पर खड़ा था। मेरे चारों तरफ़ उस प्राचीन नगर के घर और गलियाँ बिखरी थीं जिसका समय पाँच हज़ार वर्ष पहले बताया जाता है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि वहाँ एक प्राचीन और पूर्णतः विकसित सभ्यता थी। इनके स्थायी रूप से टिके रहने का कारण है इसका ठेठ भारतीयपन और यही आधुनिक भारतीय सभ्यता का आधार है। यह विचार आश्चर्यचकित कर देता है कि कोई संस्कृति या सभ्यता इस प्रकार पाँच-छह हज़ार वर्ष या उससे भी कुछ अधिक समय तक निरंतर बनी रहे, वह भी बराबर परिवर्तनशील और विकासमान रहकर। फ़ारस, मिस्र, ग्रीस, चीन, अरब, मध्य-एशिया और भू-मध्य सागर के लोगों से उसका बराबर निकट संपर्क रहा। यद्यपि भारत ने उन्हें प्रभावित किया और स्वयं भी उनसे प्रभावित हुआ, फिर भी उसका सांस्कृतिक आधार इतना मज़बूत था कि वह हिला नहीं। इस मज़बूती का रहस्य क्या है?

मोहनजोदड़ो की एक नाली और उसका विशाल प्रवेशद्वार

मैंने भारत का इतिहास और उसके विशाल प्राचीन साहित्य के कुछ अंशों को पढ़ा। मुझ पर विचारों की तेजस्विता, भाषा की स्पष्टता और उसके पीछे सक्रिय मस्तिष्क की समृद्धि ने गहरा प्रभाव डाला। मैंने उन पराक्रमी यात्रियों के साथ भारत की यात्रा की जो सुदूर अतीत में यहाँ चीन तथा पश्चिमी और मध्य-एशिया से आए थे और अपनी यात्राओं की दास्तान छोड़ गए थे। मैं पूर्वी एशिया, अंगकोर, बोरोबुदुर और बहुत-सी जगहों में भारत की उपलब्धियों के बारे में सोचने लगा। मैं उस हिमालय पर घूमता रहा जिसका पुराने मिथकों और

© NCERT not to be republished

2018-19

दंतकथाओं के साथ निकट संबंध है और जिसने हमारे विचारों और साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। पहाड़ों के प्रति मेरे प्रेम ने और कश्मीर के साथ मेरे खून के रिश्ते ने मुझे उनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। इस महान पर्वत से निकलकर भारत के मैदानों में बहने वाली भारत की विशाल नदियों ने मुझे आकर्षित किया और इतिहास के अनगिनत पहलुओं की याद ताज़ा की। इंडस या सिंधु, जिसके आधार पर हमारे इस देश का नाम पड़ा 'इंडिया' और 'हिंदुस्तान', और जिसे पार करके हज़ारों वर्षों से यहाँ जातियाँ और कबीले, काफ़िले और फ़ौजें आती रही हैं। ब्रह्मपुत्र...इतिहास की मुख्यधारा से लगभग कटी हुई, पर पुरानी कहानियों में आज भी जीवित, उत्तरपूर्वी पहाड़ियों के हृदय में पड़ी गहरी दरारों के बीच से बरबस मार्ग बनाती हुई भारत में प्रवेश करती है और फिर पहाड़ों और जंगलों से भरे मैदान के बीच शांत रमणीय धारा के रूप में बहने लगती है। यमुना, जिसके चारों ओर नृत्य, उत्सव और नाटक से संबद्ध न जाने कितनी पौराणिक कथाएँ एकत्र हैं। इन सबसे बढ़कर है, भारत की नदी गंगा, जिसने इतिहास के आरंभ से ही भारत के हृदय पर राज किया है और लाखों की तादाद में लोगों को अपने तटों की ओर खींचा है। प्राचीन काल से आधुनिक युग तक, गंगा की गाथा भारत की सभ्यता और संस्कृति की कहानी है।

मैंने पुराने स्मारकों और भग्नावशेषों को और पुरानी मूर्तियों और भित्ति चित्रों को देखा–अजंता, एलोरा, ऐलिफ़ेंटा की गुफ़ाओं और अन्य स्थानों को देखा। मैंने आगरा और दिल्ली में कुछ समय बाद बनी खूबसूरत इमारतों को भी देखा, जहाँ का प्रत्येक पत्थर भारत के अतीत की कहानी कह रहा था।

मैं अपने शहर इलाहाबाद में या फिर हरिद्वार में महान स्नान-पर्व कुंभ के मेले में जाता हूँ और देखता हूँ कि वहाँ अब भी सैकड़ों और हज़ारों की तादाद में लोग आते हैं–वैसे ही जैसे हज़ारों वर्ष से उनके पुरखे गंगा-स्नान करने के लिए भारत के सभी कोनों से आते रहे हैं। मुझे तेरह सौ साल पहले चीनी यात्रियों और कुछ दूसरे लोगों द्वारा लिखे इन पर्वों के वर्णनों की याद आ जाती है, गोकि उस समय भी ये मेले पुराने पड़ चुके थे और अनजाने प्राचीन काल में गुम हो गए थे। मुझे हैरत होती थी, कि वह कौन-सी प्रबल

© NCERT not to be republished

2018-19

आस्था थी जो हमारे लोगों को अनगिनत पीढ़ियों से भारत की इस प्रसिद्ध नदी की ओर खींचती रही है।

मेरे अध्ययन की पृष्ठभूमि के साथ इन यात्राओं और दौरों ने मिलकर मुझे अतीत में देखने की अंतर्दृष्टि दी। मेरे मन में भारत की जो तसवीर थी उसमें धीरे-धीरे सच्चाई का बोध घर करने लगा। मेरे पूर्वजों की भूमि में ऐसे जीते जागते लोग आबाद हो गए जो हँसते-रोते थे, प्यार करते थे और पीड़ा भोगते थे। इन्हीं में ऐसे लोग भी थे जिन्हें ज़िंदगी की जानकारी और समझ थी। इस अतीत के सैकड़ों सजीव चित्र मेरे मन में भरे थे। जब भी किसी जगह जाता था, उस विशेष स्थान से संबद्ध चित्र तत्काल मेरे सामने आ खड़ा होता था। बनारस के पास सारनाथ में मैंने बुद्ध को उनका पहला उपदेश देते हुए लगभग साफ़ देखा। ढाई हज़ार वर्ष का फ़ासला तय करके उनके कुछ अभिलिखित शब्द जैसे दूर से आती प्रतिध्वनि की तरह मुझे सुनाई पड़े। अशोक के पाषाण स्तंभ जैसे अपने शिलालेखों के माध्यम से मुझे एक ऐसे आदमी के बारे में बताते थे, जो खुद एक सम्राट होकर भी किसी अन्य राजा और सम्राट से महान था। फ़तेहपुर सीकरी में, अपने साम्राज्य को भुलाकर बैठा अकबर विभिन्न मतों के विद्वानों से संवाद और वाद-विवाद कर रहा था। वह जिज्ञासु भाव से मनुष्य की शाश्वत समस्याओं का हल तलाश कर रहा था।

इस तरह भारत के इतिहास की लंबी झाँकी अपने उतार-चढ़ावों के और विजय-पराजयों के साथ जैसे धीरे-धीरे मेरे सामने खुलती जा रही थी। मुझे इतिहास के पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही इस सांस्कृतिक परंपरा की निरंतरता में कुछ विलक्षणता प्रतीत होती है। यह परंपरा जो दूर-दूर तक जनता में फैली थी और जिसने उस पर गहरा प्रभाव डाला था।

भारत की शक्ति और सीमा

भारत की शक्ति के स्रोतों और उसके पतन और नाश के कारणों की खोज लंबी और उलझी हुई है। पर उसके पतन के हाल के कारण पर्याप्त स्पष्ट हैं। भारत तकनीक की दौड़ में पिछड़ गया और यूरोप जो तमाम बातों में एक ज़माने से पिछड़ा हुआ था, तकनीकी प्रगति के मामले में आगे निकल गया।

© NCERT not to be republished

इस तकनीकी विकास के पीछे विज्ञान की चेतना थी तथा हौसलामंद जीवनी शक्ति और मानसिकता थी। नयी तकनीकों ने पश्चिमी यूरोप के देशों को सैनिक बल दिया और उनके लिए अपना विस्तार करके पूरब पर अधिकार करना आसान हो गया। यह केवल भारत की ही नहीं, लगभग सारे एशिया की कहानी है।

ऐसा क्यों हुआ, इस गुत्थी को सुलझाना ज़्यादा मुश्किल है क्योंकि पुराने समय में तो भारत में मानसिक सजगता और तकनीकी कौशल की कमी थी नहीं, किंतु बाद की सदियों में उत्तरोत्तर गिरावट का आभास होने लगता है। जीवन की लालसा और उद्यम में कमी आ जाती है। क्षीण होती रचनात्मक प्रवृत्ति की जगह अनुकरण की प्रवृत्ति ले लेती है। जहाँ कामयाबी के साथ विद्रोही विचार-पद्धति ने प्रकृति और ब्रह्मांड के रहस्यों को भेदने का प्रयास किया था, वहाँ शब्दाडंबर से लैस भाष्यकार उसकी जगह लेता दिखाई देने लगता है। भव्य कला और मूर्ति निर्माण का स्थान जटिल पच्चीकारी वाली सावधानी से की गई नक्काशी लेने लगी। प्रभावी किंतु सरल, सजीव और समृद्ध भाषा की जगह, अत्यंत अलंकृत और जटिल साहित्य शैली ने ले ली। साहसिक कार्यों की लालसा और छलकती हुई ज़िंदगी, जिसके कारण सुदूर देशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार संभव हो सका था, क्षीण हो चली और उसके स्थान पर महासागरों को पार करने पर रोक लगाने वाली संकीर्ण रूढ़िवादिता ने जन्म ले लिया। जाँच-पड़ताल की विवेकपूर्ण चेतना लुप्त होती गई और अतीत की अंधी मूर्तिपूजा ने उसकी जगह ले ली। अतीत के विकट भार ने उसे कुचल कर रख दिया और वह एक तरह की मूर्च्छा से ग्रस्त हो गई। मानसिक जड़ता और शारीरिक थकावट की इस हालत में भारत का ह्रास होने लगा। वह गतिहीन और जड़ हो गया जबकि विश्व के दूसरे हिस्से प्रगति के पथ पर बढ़ते गए।

किंतु यह स्थिति का पूरा और पूर्णतः सही सर्वेक्षण नहीं है। यदि केवल जड़ता और गतिहीनता का एकरस और लंबा दौर रहा होता, तो उसका नाता अतीत से पूरी तरह टूट जाता। एक युग का अंत और उसके ध्वंसावशेषों पर किसी नयी चीज़ का निर्माण होता। इस तरह का क्रमभंग नहीं हुआ और भारत में भी निरंतरता बनी रही। इसके अलावा, समय-समय पर पुनर्जागरण

2018-19

के दौर आते रहे। नए को समझने और उसे अनुकूल बनाकर कम-से-कम पुराने के उस अंश के साथ, जिसको रक्षा करने लायक समझा गया, उसका सामंजस्य करने के प्रयास साफ़ दिखाई पड़ते हैं। अक्सर पुराने का केवल बाहरी ढाँचा प्रतीक के रूप में बचा रहा और उसकी अंतर्वस्तु बदल गई। ऐसी लालसा, जो लोगों को उस लक्ष्य की ओर खींचती है जो पूरी तरह सिद्ध नहीं किया जा सका हो, और साथ ही प्राचीन और नवीन के बीच सामंजस्य स्थापित करने की इच्छा बराबर बनी रहती है – इसी लालसा ने उन्हें गति दी और उन्हें पुराने को बनाए रखने के साथ-साथ नए विचारों को आत्मसात करने की सामर्थ्य दी।

भारत की तलाश

पुस्तकों, प्राचीन स्मारकों और विगत सांस्कृतिक उपलब्धियों ने मुझमें एक हद तक भारत की समझ तो पैदा की लेकिन मुझे उससे संतोष नहीं हुआ, न ही मुझे वह उत्तर मिला जिसकी मैं तलाश कर रहा था। वर्तमान मेरे लिए और मुझ जैसे बहुत से और लोगों के लिए मध्ययुगीनता, भयंकर गरीबी एवं दुर्गति और मध्य वर्ग की कुछ-कुछ सतही आधुनिकता का विचित्र मिश्रण है। मैं अपने वर्ग और अपनी किस्म के लोगों का प्रशंसक नहीं था, फिर भी भारतीय संघर्ष में नेतृत्व के लिए मैं निश्चित रूप से मध्य वर्ग की ओर देखता था। यह मध्य वर्ग स्वयं को बंदी और सीमाओं में जकड़ा हुआ महसूस करता था और खुद तरक्की और विकास करना चाहता था। अंग्रेज़ी शासन के ढाँचे के भीतर ऐसा न कर पाने के कारण उसके भीतर विद्रोह की चेतना पनपी। लेकिन यह चेतना उस ढाँचे के खिलाफ़ नहीं जाती थी जिसने हमें रौंद दिया था। ये उस ढाँचे को बनाए रखना चाहते थे और अंग्रेज़ों को हटाकर उसका संचालन करना चाहते थे। ये मध्य वर्ग के लोग इस हद तक इस ढाँचे की पैदाइश थे कि उसे चुनौती देना या उसे उखाड़ फेंकने का प्रयास करना इनके बस की बात नहीं थी।

नयी ताकतों ने सिर उठाया और वे हमें ग्रामीण जनता की ओर ले गईं। पहली बार एक नया और दूसरे ढंग का भारत उन युवा बुद्धिजीवियों के सामने आया जो इसके अस्तित्व को लगभग भूल ही गए थे या उसे बहुत

not to be republished © NCERT

2018-19

कम अहमियत देते थे। यह दृश्य बेचैन कर देने वाला था इसलिए कि उसने हमारे कुछ मूल्यों और निष्कर्षों में संदेह उत्पन्न कर दिया था। तब हमने भारत के वास्तविक रूप की तलाश शुरू की और इससे हमारे भीतर इसकी समझ और द्वंद्व दोनों ही पैदा हुए। कुछ लोग इस ग्रामीण समुदाय से पहले से परिचित थे, इसलिए उन्हें कोई नया उत्तेजक अनुभव नहीं हुआ। पर मेरे लिए यह सही अर्थों में नयी तलाश के लिए यात्रा थी। गोया कि मुझे बराबर अपने लोगों की असफलताओं और कमज़ोरियों का दर्द भरा अहसास रहता था, पर भारत की ग्रामीण जनता में कुछ ऐसा था जिसे परिभाषित करना कठिन है पर उसने मुझे बराबर आकर्षित किया। उनमें कुछ ऐसी बात थी जो मध्य वर्ग में अनुपस्थित थी।

मैं आम जनता की अवधारणा को काल्पनिक नहीं बनाना चाहता। मेरे लिए भारत के लोगों का अपनी सारी विविधता के साथ वास्तविक अस्तित्व है। उनकी विशाल संख्या के बावजूद मैं उनके बारे में अनिश्चित समुदायों के नहीं, व्यक्तियों के रूप में सोचने की कोशिश करता हूँ। चूँकि मैंने उनसे बहुत अपेक्षाएँ नहीं रखी, शायद इसीलिए मुझे निराशा भी नहीं हुई। मैंने जितनी उम्मीद की थी उससे कहीं अधिक पाया। मुझे सूझा कि इसका कारण और इसके साथ ही उनमें जो एक प्रकार की दृढ़ता और अंत:शक्ति है उसका कारण भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा है जिसे उन्होंने कुछ अंशों में अब भी बचाए रखा है। पिछले दो सौ वर्षों में उन्होंने जो अत्याचार झेला है बहुत कुछ तो उसी के कारण समाप्त हो गया। फिर भी कुछ तो ऐसा बच रहा है जो सार्थक है और उसके साथ बहुत कुछ ऐसा है जो निरर्थक और अनिष्टकर है।

भारत माता

अक्सर जब मैं एक के बाद एक सभा में जाता तो श्रोताओं से मैं अपने इस देश की चर्चा करता—हिंदुस्तान की और साथ ही भारत की—जो जाति के संस्थापक 'भरत' के नाम पर आधारित इसका प्राचीन संस्कृत नाम है। मैंने शहरों में ऐसा कम किया क्योंकि वहाँ के श्रोता अपेक्षाकृत आधुनिक थे और वे अधिक दमदार भाषण की अपेक्षा करते थे। पर सीमित नज़रिए वाले

2018-19

किसानों को मैंने इस महान देश की बाबत बताया जिसकी मुक्ति के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं, कि कैसे इसका हर हिस्सा दूसरे से भिन्न होते हुए भी भारत है। मैंने उन्हें उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक किसानों की सामान्य समस्याओं की जानकारी दी और उस स्वराज की भी जो कुछ विशेष लोगों के लिए नहीं, सब के लिए, भारत के हर हिस्से के लिए एक-सा होगा। मैंने उन्हें सुदूर उत्तर-पश्चिम में खैबर पास से कन्याकुमारी या केप कोमरिन तक अपनी यात्रा के बारे में बताया। मैंने बताया कि कैसे हर जगह मुझसे किसानों ने एक जैसे सवाल पूछे, क्योंकि उनकी समस्याएँ समान थीं–गरीबी, कर्ज़, निहित स्वार्थ, ज़मींदार, महाजन, भारी लगान और कर, पुलिस के अत्याचार और ये सब उस ढाँचे में लिपटे हुए थे जिसे हमारे ऊपर विदेशी हुकूमत ने आरोपित किया था। साथ ही यह भी कि राहत भी सबके लिए आनी चाहिए। मैंने इस बात की कोशिश की कि वे भारत को अखंड मानकर उसके बारे में सोचें। साथ ही थोड़ा-बहुत उस विराट विश्व के बारे में भी सोचें, जिसके हम एक हिस्से हैं।

यह काम बहुत आसान नहीं था पर उतना मुश्किल भी नहीं था जैसा मैंने सोचा था। हमारे प्राचीन महाकाव्यों, पुरागाथाओं और दंतकथाओं की उन्हें पूरी जानकारी थी। इस साहित्य ने अपने देश की अवधारणा से उन्हें परिचित करा दिया था। इन लोगों में से हमेशा कुछ ऐसे भी होते ही थे जिन्होंने भारत के चारों कोनों में स्थित धार्मिक स्थलों की यात्रा की थी।

कभी-कभी जैसे ही मैं किसी सभा में पहुँचता था, मेरे स्वागत में अनेक कंठों का स्वर गूँज उठता था– "भारत माता की जय।" मैं उनसे अचानक प्रश्न कर देता कि इस पुकार से उनका क्या आशय है? मेरा प्रश्न उन्हें मनोरंजक लगता और चकित करता। उनकी ठीक-ठीक समझ में नहीं आता कि वे मुझे क्या जवाब दें और तब वे एक दूसरे की ओर, और फिर मेरी ओर ताकने लगते। मैं बार-बार सवाल करता जाता। आखिर एक हट्टा-कट्टा जाट, जिसका न जाने कितनी पीढ़ियों से मिट्टी से अटूट नाता है, जवाब में कहता कि यह भारत माता हमारी धरती है, भारत की प्यारी मिट्टी। मैं फिर सवाल करता–"कौन सी मिट्टी? उनके अपने गाँव के टुकड़े की या ज़िले और राज्य

2018-19

के तमाम टुकड़ों की या फिर पूरे भारत की मिट्टी?" प्रश्नोत्तर का यह सिलसिला तब तक चलता रहता जब तक वे प्रयत्न करते रहते और आखिर में कहते कि भारत वह सब कुछ तो है ही जो उन्होंने सोच रखा है, उसके अलावा भी बहुत कुछ है। भारत के पहाड़ और नदियाँ, जंगल और फैले हुए खेत जो हमारे लिए खाना मुहैया करते हैं, सब हमें प्रिय हैं। लेकिन जिस चीज़ का सबसे अधिक महत्त्व है वह है भारत की जनता। उनके और मेरे जैसे तमाम लोग। वे सब लोग जो इस विशाल धरती पर चारों ओर फैले हैं। भारत माता मूल रूप से यही लाखों लोग हैं और उसकी जय का अर्थ है इसी जनता जनार्दन की जय। मैंने उनसे कहा कि तुम भारत माता के हिस्से हो, एक तरह से तुम खुद ही भारत माता हो। जैसे-जैसे यह विचार धीरे-धीरे उनके दिमाग में बैठता जाता, उनकी आँखें चमकने लगतीं मानो उन्होंने कोई महान खोज कर ली हो।

भारत की विविधता और एकता

भारत की विविधता अद्‌भुत है, प्रकट है, वह सतह पर दिखाई पड़ती है और कोई भी उसे देख सकता है। इसका ताल्लुक शारीरिक रूप से भी है और मानसिक आदतों और विशेषताओं से भी। बाहर से देखने पर उत्तर-पश्चिमी इलाके के पठान और सुदूर दक्षिण के वासी तमिल में बहुत कम समानता है। उनकी नस्लें भिन्न हैं, हालाँकि उनके भीतर कुछ समान सूत्र हो सकते हैं। वे चेहरे और शरीर-गठन में, खाने और पहनावे में और भाषा में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में मध्य-एशिया की गमक तो है ही, वहाँ के बहुत से रीति-रिवाज, जैसे कश्मीर के भी, हिमालय के उस पार के देशों की याद दिलाते हैं। पठानों के लोक प्रचलित नृत्य रूसी कोज़क नृत्य शैली से मिलते हैं। इन तमाम भिन्नताओं के बावजूद पठान पर भारत की छाप वैसी ही स्पष्ट है जैसी तमिल पर। इसमें कोई अचरज नहीं, क्योंकि सीमा के ये प्रदेश, और साथ ही अफ़गानिस्तान भी, भारत के साथ हज़ारों वर्ष से जुड़े रहे हैं। ये पुराने तुर्क और दूसरी जातियाँ जो अफ़गानिस्तान और

2018-19

© NCERT not to be republished

मध्य एशिया में बसी थीं, इस्लाम के आने से पहले, बौद्ध थीं और उससे भी पहले वैदिक काल में हिंदू थीं। सीमांत क्षेत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रमुख केंद्रों में से था। अब भी स्मारकों और मठों के ढेरों ध्वस्त अवशेष उसमें बिखरे हैं—विशेष रूप से तक्षशिला के महान विश्वविद्यालय के, जो दो हज़ार वर्ष पहले अपनी प्रसिद्धि की चरम-सीमा पर था। सारे भारत के साथ ही एशिया के विभिन्न भागों से विद्यार्थी यहाँ खिंचे आते थे। धर्म-परिवर्तन से अंतर ज़रूर आया, पर उन क्षेत्रों के लोगों ने जो मानसिकता विकसित कर ली थी वह पूरी तरह नहीं बदल सकी।

पठान और तमिल दो चरम उदाहरण हैं, बाकी की स्थिति कहीं इन दोनों के बीच में है। सबकी अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, पर सब पर इससे भी गहरी छाप भारतीयता की है। यह जानकारी बेहद हैरत में डालने वाली है कि बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, आंध्र, उड़िया, असमी, कन्नड़, मलयाली, सिंधी, पंजाबी, पठान, कश्मीरी, राजपूत और हिंदुस्तानी भाषा-भाषी जनता से बसा हुआ विशाल मध्य भाग, कैसे सैकड़ों वर्षों से अपनी-अपनी अलग पहचान बनाए रहा। इसके बावजूद इन सबके गुण-दोष कमोबेश एक से हैं—इसकी जानकारी पुरानी परंपरा और अभिलेखों से मिलती है। साथ ही इस पूरे दौरान वे ऐसे भारतीय बने रहे हैं जिनकी राष्ट्रीय विरासत एक ही थी और उनकी नैतिक और मानसिक विशेषताएँ भी समान थीं। प्राचीन चीन की तरह प्राचीन भारत अपने आप में एक दुनिया थी, एक संस्कृति और सभ्यता थी जिसने तमाम चीज़ों को आकार दिया था। विदेशी प्रभाव आए और अक्सर उस संस्कृति को प्रभावित करके उसी में जज़्ब हो गए। जब भी विघटनकारी तत्व उभरे तत्काल उन्होंने सामंजस्य खोजने के प्रयास को बढ़ावा दिया। सभ्यता के आरंभ से ही भारतीय मानस में एकता के स्वप्न ने अपनी जगह बनाए रखी। इस एकता की कल्पना कभी किसी बाहर से आरोपित वस्तु या बाहरी तत्वों के या विश्वास के मानकीकरण के रूप में नहीं की गई। इसके अंतर्गत विश्वासों और रीति-रिवाजों के प्रति अपार सहिष्णुता का पालन किया गया और साथ ही हर तरह की विविधता को मान्यता ही नहीं प्रोत्साहन भी दिया गया।

2018-19

किसी एक देशीय समूह में, चाहे वे कितने घनिष्ठ रूप में एक-दूसरे से जुड़े हों, छोटी-बड़ी भिन्नताएँ हमेशा देखी जा सकती हैं। उस समूह की मूल एकता तब प्रकट होती है जब उसकी तुलना किसी अन्य देशीय समूह से की जाती है। यह बात अलग है कि अक्सर दो निकटवर्ती समूहों की भिन्नता, सीमांत इलाकों में या तो धुँधली पड़ जाती हैं या आपस में घुल-मिल जाती हैं। प्राचीन और मध्य युग में, आधुनिक राष्ट्र के विचार ने जन्म नहीं लिया था और सामंती, धार्मिक या जातीय संबंधों का महत्त्व अधिक था। फिर भी, मेरा विचार है कि ज्ञात इतिहास में किसी भी समय एक भारतवासी, भारत के किसी भी हिस्से में अपने ही घर की-सी-अपनेपन की अनुभूति करता था, जबकि किसी भी दूसरे देश में पहुँचकर वह अजनबी और परदेशी महसूस करता था। उन देशों में जाकर जिन्होंने कुछ दूर तक उसकी संस्कृति या धर्म को अपना लिया था, उसे अजनबीपन का बोध निश्चय ही कम होता था। वे लोग जो किसी गैर-भारतीय धर्म को मानने वाले थे या भारत में आकर यहीं बस गए, कुछ ही पीढ़ियों के गुज़रने के दौरान स्पष्ट रूप से भारतीय हो गए जैसे यहूदी, पारसी और मुसलमान। जिन भारतीयों ने इन धर्मों को स्वीकार कर लिया वे भी धर्म-परिवर्तन के बावजूद भारतीय बने रहे।

आज, जब राष्ट्रीयतावाद की अवधारणा कहीं अधिक विकसित हो गई है, विदेशों में भारतीय अनिवार्य रूप से एक राष्ट्रीय समुदाय बनाकर विभिन्न कारणों से एकजुट होकर रहते हैं, भले ही उनमें भीतरी मतभेद हों। एक हिंदुस्तानी ईसाई, कहीं भी जाए, उसे हिंदुस्तानी ही माना जाता है। इस प्रकार किसी हिंदुस्तानी मुसलमान को तुर्की, अरब, ईरान या किसी भी अन्य देश में, जहाँ इस्लाम धर्म का प्रभुत्व हो, हिंदुस्तानी ही समझा जाता है।

मेरे खयाल से, हम सब के मन में अपनी मातृभूमि की अलग-अलग तसवीरें हैं और कोई दो आदमी बिलकुल एक जैसा नहीं सोच सकते। जब मैं भारत के बारे में सोचता हूँ, तो मेरे मन में बहुत-सी बातें आती हैं। मैं सोचता हूँ-दूर-दूर तक फैले मैदानों और उन पर बसे अनगिनत छोटे-छोटे गाँवों के बारे में। उन कस्बों और शहरों के बारे में जिनकी मैंने यात्रा की।

© NCERT not to be republished

वर्षा ऋतु की उस जादुई बरसात के बारे में जो झुलसी हुई धरती में जीवन संचार करके उसे सहसा सौंदर्य और हरियाली के झिलमिलाते प्रसार में बदल देती है। विशाल नदियों और उनके बहते जल के बारे में। ठंड की चादर से लिपटे खैबर पास के बारे में। भारत के दक्षिणी सिरे के बारे में। लोगों के बारे में—व्यक्ति और समूह दोनों रूपों में और सबसे ज़्यादा बर्फ़ की टोपी पहने हिमालय के या वसंत ऋतु में कश्मीर की किसी पहाड़ी घाटी के बारे में जो नवजात फूलों से लदी होती है और जिसके बीच से कलकल-खलखल करता झरना बहता है। हम अपनी पसंद की तसवीर बनाते हैं और उसे सहेजकर रखते हैं।

जन संस्कृति

मैंने वर्तमान समय में भारतीय जनता के गतिशील जीवन-नाटक को देखा। ऐसे अवसर पर मैं अक्सर उन सूत्रों को खोज लेता था जिनसे उनका जीवन अतीत में बँधा है, जबकि उनकी आँखें भविष्य पर टिकी रहती थीं। हर जगह मुझे एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मिली जिसका जनता के जीवन पर बहुत गहरा असर था। इस पृष्ठभूमि में लोक प्रचलित दर्शन, परंपरा, इतिहास, मिथक और पुराकथाओं का मेल था और इनमें से किसी को दूसरे से अलग करके देख पाना संभव नहीं था। पूरी तरह अशिक्षित और निरक्षर लोग भी इस पृष्ठभूमि में हिस्सेदार थे। लोक-प्रचलित अनुवादों और टीकाओं के माध्यम से भारत के प्राचीन महाकाव्य—*रामायण* और *महाभारत* और अन्य ग्रंथ भी जनता के बीच दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। हर घटना, कथा और उनका नैतिक अर्थ, लोकमानस पर अंकित था और उसने उन्हें समृद्ध और संतुष्ट बनाया था। अनपढ़ ग्रामीणों को सैकड़ों पद याद थे और अपनी बातचीत के दौरान वे बराबर या तो उन्हें उद्धृत करते थे या फिर किसी प्राचीन रचना में सुरक्षित किसी ऐसी कहानी का उल्लेख करते थे जिससे कोई नैतिक उपदेश निकलता हो। रोज़मर्रा की ज़िंदगी के मसलों के बारे में सीधी-सादी बातचीत को ये देहाती लोग जब इस तरह का साहित्यिक मोड़ देते थे तो मुझे अक्सर बहुत आश्चर्य होता था। यदि मेरे मन में लिखित इतिहास और लगभग

© NCERT not to be republished

2018-19

सुनिश्चित तथ्यों से निर्मित तसवीरों का भंडार था तो मैंने महसूस किया कि अनपढ़ किसान के मन में भी उसका अपना तसवीरों का भंडार है। यह बात अलग है कि उसका स्रोत पुराकथाएँ एवं परंपरा और महाकाव्य के नायक-नायिकाएँ ही अधिक थीं और इतिहास बहुत कम। तिस पर भी वह बहुत स्पष्ट होता था। मैं उनके चेहरे, उनके आकार और उनकी चाल-ढाल को ध्यान से देखता। उनके बीच बहुत से संवेदनशील चेहरे, बलिष्ठ देह और सीधे साफ़ अवयवों वाले पुरुष दिखाई देते। महिलाओं में लावण्य, नम्रता, गरिमा और संतुलन के साथ-साथ एक ऐसा चेहरा जो अवसाद से भरा होता था। कभी-कभी किसी देहाती रास्ते या गाँव के बीच से गुज़रते हुए मेरी नज़र किसी मनोहर पुरुष या सुंदर स्त्री पर पड़ती थी तो मैं विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। वे मुझे पुराने भित्ति चित्रों की याद दिला देते थे। मुझे इस बात से हैरत होती कि उन तमाम भयानक कष्टों के बावजूद, जिनसे भारत युगों तक गुज़रता रहा, आखिर यह सौंदर्य कैसे टिका और बना रहा! इन लोगों को साथ लेकर हम क्या नहीं कर सकते बशर्ते इनके हालात बेहतर हों और इनके पास कुछ करने के ज़्यादा अवसर हों।

चारों ओर गरीबी और उससे पैदा होने वाली अनगिनत विपत्तियाँ फैली थीं और इसकी छाप हर माथे पर थी। ज़िंदगी को कुचलकर विकृत और भयंकर रूप दे दिया गया था। इस विकृति से तरह-तरह के भ्रष्टाचार पैदा हुए और लगातार अभाव और असुरक्षा की स्थिति बनी रहने लगी। यह सब देखने में सुखद नहीं था, पर भारत की असलियत यही थी। स्थितियों को समर्पित भाव से स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। पर साथ ही एक प्रकार की नम्रता और भलमनसाहत थी जो हज़ारों वर्ष की सांस्कृतिक विरासत की देन थी, जिसे बड़े से बड़ा दुर्भाग्य भी नहीं मिटा पाया था।

© NCERT not to be republished

सिंधु घाटी सभ्यता

एक हड़प्पाई मुहर

भारत के अतीत की सबसे पहली तसवीर उस सिंधु घाटी सभ्यता में मिलती है, जिसके अवशेष सिंध में मोहनजोदड़ो और पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा में मिले हैं। इन खुदाइयों ने प्राचीन इतिहास की समझ में क्रांति ला दी है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा एक दूसरे से काफ़ी दूरी पर हैं। दोनों स्थानों पर इन खंडहरों की खोज मात्र एक संयोग थी। इस बात में संदेह नहीं कि इन दोनों के बीच भी ऐसे ही बहुत से और नगर एवं अवशेष दबे पड़े होंगे जिन्हें प्राचीन मनुष्य ने बसाया होगा। यह सभ्यता विशेष रूप से उत्तर भारत में दूर-दूर तक फैली थी। संभव है कि भविष्य में भी इस सुदूर अतीत को उद्घाटित करने का काम हाथ में लिया जाए और महत्त्वपूर्ण नयी खोजें की जाएँ। इस सभ्यता के अवशेष इतनी दूर-दूर जगहों पर मिले हैं—जैसे पश्चिम में काठियावाड़ में और पंजाब के अंबाला ज़िले में। यह विश्वास किया जाता है कि यह सभ्यता गंगा की घाटी तक फैली थी। इसलिए यह केवल सिंधु घाटी सभ्यता भर नहीं उससे बहुत अधिक है।

अब तक हम जो जान सके हैं, उसका बहुत महत्त्व है। सिंधु घाटी सभ्यता, आज जिस रूप में मिली है, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अत्यंत विकसित सभ्यता थी और उस स्थिति तक पहुँचने में उसे हज़ारों वर्ष लगे होंगे। आश्चर्य की बात है कि यह सभ्यता प्रधान रूप से धर्मनिरपेक्ष सभ्यता थी। धार्मिक तत्व मौजूद होने पर भी इस पर हावी नहीं

© NCERT not to be republished

थे। यह भी स्पष्ट है कि यह भारत में बाद के सांस्कृतिक युगों की अग्रदूत थी।

सिंधु घाटी सभ्यता ने फ़ारस, मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यताओं से संबंध स्थापित किया और व्यापार किया। कुछ दृष्टियों से यह सभ्यता उनकी तुलना में बेहतर थी। यह एक ऐसी नागर सभ्यता थी जिसमें व्यापारी वर्ग धनाढ्य था और उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। सड़कों पर दुकानों की कतारें थीं और दुकानें संभवत: छोटी थीं।

सिंधु घाटी सभ्यता और वर्तमान भारत के बीच समय के ऐसे कई दौर गुज़रे हैं जिनके बारे में हम बहुत कम जानते हैं। वैसे भी इस बीच असंख्य परिवर्तन हुए हैं। लेकिन भीतर ही भीतर निरंतरता की ऐसी शृंखला चली आ रही है जो आधुनिक भारत को छ:-सात हज़ार पुराने उस बीते हुए युग से जोड़ती है जब संभवत: सिंधु घाटी सभ्यता की शुरुआत हुई थी। यह देखकर अचरज होता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में कितना कुछ ऐसा है जो हमें

मोहनजोदड़ो का महान स्नानागार

© NCERT not to be republished

चली आती परंपरा और रहन-सहन की, लोक-प्रचलित रीति-रिवाजों की, दस्तकारी की, यहाँ तक कि पोशाकों के फ़ैशन की याद दिलाता है।

यह बात दिलचस्प है कि भारत अपनी कहानी की इस भोर-बेला में ही एक नन्हे बच्चे की तरह नहीं, बल्कि अनेक रूपों में विकसित सयाने रूप में दिखाई पड़ता है। वह जीवन के तौर-तरीकों से अपरिचित नहीं है। उसने कलाओं और जीवन की सुख-सुविधाओं में उल्लेखनीय तकनीकी प्रगति कर ली है। उसने केवल सुंदर वस्तुओं का सृजन ही नहीं किया बल्कि आधुनिक सभ्यता के उपयोगी और ज़्यादा ठेठ चिह्नों—अच्छे हमामों और नालियों के तंत्र का निर्माण भी किया है।

आर्यों का आना

सिंधु घाटी सभ्यता के ये लोग कौन थे और कहाँ से आए थे इसका हमें अब भी पता नहीं है। यह संभावना भी है कि इनकी संस्कृति इसी देश की संस्कृति थी। उसकी जड़ें और शाखाएँ दक्षिण भारत में भी मिल सकती हैं। कुछ विद्वानों को इन लोगों और दक्षिण भारत की द्रविड़ जातियों एवं संस्कृति के बीच अनिवार्य समानता दिखाई पड़ती है। यदि प्राचीन समय में कुछ लोग भारत में आए भी थे तो यह घटना मोहनजोदड़ो के समय से कई हज़ार वर्ष पहले घटी होगी। व्यावहारिक दृष्टि से हम उन्हें भारत के ही निवासी मान सकते हैं।

सिंधु घाटी की सभ्यता के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि उसका अंत अकस्मात किसी ऐसी दुर्घटना से हो गया, जिसकी कोई व्याख्या नहीं मिलती। सिंधु नदी अपनी भयंकर बाढ़ों के लिए प्रसिद्ध है जो नगरों और गाँवों को बहा ले जाती है। यह भी संभव है कि मौसम के परिवर्तन से धीरे-धीरे ज़मीन सूखती गई हो और खेतों पर रेगिस्तान छा गया हो। मोहनजोदड़ो के खंडहर अपने आप में इस बात का प्रमाण हैं कि बालू की तह पर तह जमती गई, जिससे शहर की ज़मीन की सतह ऊँची उठती गई और नगरवासियों को मजबूर होकर पुरानी नींवों पर ऊँचाई पर मकान बनाने पड़े। खुदाई में निकले कुछ मकान दो या तीन मंज़िले जान पड़ते हैं। वे इस बात का सबूत हैं कि सतह के ऊँचे उठने के कारण समय-समय पर उनकी

© NCERT not to be republished

दीवारें भी ऊँची उठाई गई हैं। हम जानते हैं कि सिंध का सूबा पुराने समय में बहुत समृद्ध और उपजाऊ था, पर मध्ययुग के बाद वह ज़्यादातर रेगिस्तान रह गया।

इसलिए यह मुमकिन है कि मौसमी परिवर्तनों ने उन इलाकों के निवासियों और उनके रहन-सहन की पद्धति को प्रभावित किया हो। लेकिन मौसम के परिवर्तनों का प्रभाव दूर-दूर तक फैली इस नागर सभ्यता के अपेक्षाकृत छोटे से हिस्से पर पड़ा होगा। हमारे पास इस बात पर विश्वास करने के कारण तो हैं कि यह सभ्यता गंगा घाटी तक या संभवतः उससे भी दूर तक फैली थी पर इस बात का फ़ैसला करने के लिए हमारे पास पर्याप्त आँकड़े नहीं हैं। वह बालू जिसने इनमें से कुछ प्राचीन शहरों पर छा कर उन्हें ढक लिया था, उसी ने उन्हें सुरक्षित भी रखा, जबकि दूसरे शहर और प्राचीन सभ्यता के प्रमाण धीरे-धीरे नष्ट होते रहे और समय के साथ खंड-खंड हो गए।

सिंधु घाटी सभ्यता और बाद के काल-खंडों के बीच निरंतर संबंध के साथ ही इस सिलसिले के टूटने के या इसमें अंतराल के प्रमाण भी मिलते हैं। यह टूटना इस बात का भी सूचक है कि बाद में आने वाली सभ्यता भिन्न प्रकार की थी। बाद में आने वाली इस सभ्यता में शुरू-शुरू में संभवतः कृषि की बहुतायत थी गोकि नगर और थोड़ा बहुत शहरी जीवन भी मौजूद था। खेतिहर पक्ष पर ज़ोर शायद उन नवागंतुकों ने दिया होगा, जो आर्य थे और उत्तर-पश्चिमी दिशा से भारत में एक के बाद एक कई बार में आए।

ऐसा माना जाता है कि आर्यों का प्रवेश सिंधु घाटी युग के लगभग एक हज़ार वर्ष बाद हुआ। यह भी संभव है कि इनमें इतना बड़ा समय का अंतर न रहा हो और पश्चिमोत्तर दिशा से भारत में ये कबीले और जातियाँ समय-समय पर आती रही हों और भारत में जज़्ब होती रही हों। सबसे पहला बड़ा सांस्कृतिक समन्वय और मेल-जोल बाहर से आने वाले आर्यों और उन द्रविड़ जाति के लोगों के बीच हुआ जो संभवतः सिंधु घाटी सभ्यता के प्रतिनिधि थे। इसी समन्वय और मेल-जोल से भारतीय जातियों और बुनियादी भारतीय संस्कृति का विकास हुआ जिनमें दोनों सभ्यताओं के

2018-19

तत्व साफ़ दिखाई पड़ते हैं। बाद के युगों में और बहुत-सी जातियाँ आईं। सबने अपना प्रभाव डाला और फिर यहीं घुल-मिलकर रह गए।

प्राचीनतम अभिलेख, धर्म-ग्रंथ और पुराण

सिंधु घाटी सभ्यता की खोज से पहले यह समझा जाता था कि हमारे पास भारतीय संस्कृति का सबसे पुराना इतिहास वेद हैं। वैदिक युग के काल निर्धारण के बारे में बहुत मतभेद रहा है। यूरोपीय विद्वान प्रायः इसका समय बहुत बाद में मानते हैं और भारतीय विद्वान पहले।

आजकल अधिकांश विद्वान *ऋग्वेद* की ऋचाओं का समय ईसा पूर्व 1500 मानते हैं। पर मोहनजोदड़ो की खुदाई के बाद से इन आरंभिक भारतीय धर्म ग्रंथों को और पुराना साबित करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। वस्तुतः यह हमारे पास मनुष्य के दिमाग की प्राचीनतम उपलब्ध रचना है। मैक्समूलर ने इसे 'आर्य मानव के द्वारा कहा गया पहला शब्द' कहा है।

भारत की समृद्ध भूमि पर प्रवेश करने के समय आर्य अपने साथ उसी कुल के विचारों को लेकर आए थे जिससे ईरान में *अवेस्ता* की रचना हुई थी। भारत की धरती पर उन्होंने उन्हीं विचारों का पल्लवन किया। वेदों और *अवेस्ता* की भाषा में भी अद्‌भुत साम्य है। कहा गया है कि वेद भारत के अपने महाकाव्यों की संस्कृत की अपेक्षा *अवेस्ता* के अधिक निकट हैं।

वेद

बहुत से हिंदू वेदों को प्रकाशित धर्म-ग्रंथ मानते हैं। उनका असली महत्त्व इस बात का उद्‌घाटन करने के कारण है कि विचारों की आरंभिक अवस्था में मानव-मस्तिष्क ने कैसे अपने को व्यक्त किया था। वह मस्तिष्क सचमुच कितना अद्‌भुत था। वेद की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है जानना। अतः वेद का सीधा-सादा अर्थ है अपने समय के ज्ञान का संग्रह। उनमें न मूर्ति-पूजा है न देव-मंदिर। वैदिक युग के आर्यों में जीवन के प्रति इतनी उमंग थी कि उन्होंने आत्मा पर बहुत कम ध्यान दिया। वे मृत्यु के बाद किसी प्रकार के अस्तित्व में बहुत अस्पष्ट ढंग से विश्वास करते थे।

पहला वेद यानी *ऋग्वेद* शायद मानव-जाति की पहली पुस्तक है। इसमें हमें मानव-मन के सबसे आरंभिक उद्‌गार मिलते हैं, काव्य-प्रवाह मिलता है और प्रकृति के सौंदर्य और रहस्य के प्रति हर्षोंमाद मिलता है। इसके अलावा हमें मनुष्य के उन साहसिक कारनामों का रिकार्ड मिलता है जो लंबे समय पहले किए गए। यहीं से भारत ने एक ऐसी तलाश आरंभ की जो उसके बाद कभी समाप्त नहीं हुई।

सभ्यता के उषाकाल में ही प्रबल और सहज कल्पना से संपन्न लोग, जीवन में छिपे हुए अनंत रहस्यों को जानने के लिए सजग हुए। उन्होंने अपनी सहज आस्था के कारण प्रकृति के प्रत्येक तत्व और शक्ति में देवत्व का आरोप किया। पर इस सबमें साहस और आनंद का भाव था।

बहुत से पश्चिमी लेखकों ने इस खयाल को बढ़ावा दिया है कि भारतीय लोग परलोक-परायण हैं। मैं समझता हूँ कि हर देश के निर्धन और अभागे लोग एक हद तक परलोक में विश्वास करने लगते हैं—जब तक कि वे क्रांतिकारी नहीं हो जाते। यही बात गुलाम देश के लोगों पर लागू होती है।

हमें भारत में भी और स्थानों की ही तरह विचार और कर्म की दो समानांतर विकसित होती धाराएँ दिखाई पड़ती हैं—एक जो जीवन को स्वीकार करती है और दूसरी जो ज़िंदगी से बचकर निकल जाना चाहती है। अलग-अलग युगों में कभी बल एक पर होता है और कभी दूसरी पर। परंतु इतना निश्चित है कि वैदिक संस्कृति की मूल पृष्ठभूमि परलोकवादी या इस विश्व को निरर्थक मानने वाली नहीं है।

जब भी भारत की सभ्यता में बहार आई, तब ऐसे हर दौर में जीवन और प्रकृति में लोगों ने गहरा रस लिया, जीने की प्रक्रिया में आनंद लिया। ऐसे ही युगों में कला, संगीत और साहित्य, साथ ही गाने-नाचने की कला, चित्रकला और रंगमंच सब का विकास हुआ। इस बात को ग्रहण करना मुमकिन नहीं है कि कोई संस्कृति या जीवन-दृष्टि, जिसका आधार पारलौकिकता हो या जो विश्व को व्यर्थ मानती हो वह सशक्त और विविधतापूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के इतने रूपों की रचना कर सकती

© NCERT not to be republished

2018-19

थी। कोई संस्कृति जो बुनियादी तौर पर पारलौकिकतावादी होगी, वह हज़ारों वर्ष बनी नहीं रह सकती।

भारतीय संस्कृति की निरंतरता

हमें आरंभ में ही एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति की शुरुआत दिखाई पड़ती है जो तमाम परिवर्तनों के बावजूद आज भी बनी हुई है। इसी समय मूल आदर्श आकार ग्रहण करने लगते हैं और साहित्य और दर्शन, कला और नाटक तथा जीवन के और तमाम क्रियाकलाप इन आदर्शों और विश्व-दृष्टि के अनुकूल चलने लगते हैं। इसी समय उस विशिष्टतावाद और छुआछूत की प्रवृत्ति का आरंभ दिखाई पड़ता है जो बाद में बढ़ते-बढ़ते असह्य हो जाती है। यही प्रवृत्ति आधुनिक युग की जाति-व्यवस्था है। यह व्यवस्था एक खास युग की परिस्थिति के लिए बनाई गई। इसका उद्देश्य था उस समय की समाज-व्यवस्था को मज़बूत बनाना और उसे शक्ति और संतुलन प्रदान करना। किंतु बाद में यह उसी समाज व्यवस्था और मानव-मन के लिए कारागृह बन गई।

फिर भी यह व्यवस्था लंबे समय तक बनी रही। उस ढाँचे के भीतर बँधे रहते हुए भी सभी दिशाओं में विकास करने की मूल प्रेरणा इतनी प्राणवान थी कि उसका प्रसार सारे भारत में और उससे आगे बढ़कर पूर्वी समुद्रों तक हुआ।

इतिहास के इस लंबे दौर में भारत अलग-थलग नहीं रहा। ईरानियों और यूनानियों से, चीनी और मध्य एशियाई तथा अन्य लोगों से उसका संपर्क बराबर बना रहा। तीन-चार हज़ार वर्षों का यह सांस्कृतिक विकास और उसका अटूट सिलसिला अद्भुत है।

उपनिषद्

उपनिषदों का समय ईसा पूर्व 800 के आसपास से माना जाता है। वे हमें भारतीय-आर्यों के चिंतन में एक कदम और आगे ले जाते हैं और यह एक लंबा कदम है।

2018-19

उपनिषदों में जाँच-पड़ताल की चेतना और चीज़ों के बारे में सत्य की खोज का उत्साह दिखाई पड़ता है। यह सही है कि सत्य की यह खोज आधुनिक विज्ञान की वस्तुनिष्ठ पद्धति से नहीं की गई, फिर भी उनके दृष्टिकोण में वैज्ञानिक पद्धति का तत्व मौजूद है। वे किसी किस्म के हठवाद को अपने रास्ते में नहीं आने देते। उनका ज़ोर अनिवार्य रूप से आत्म-बोध पर है, व्यक्ति की आत्मा और परमात्मा संबंधी ज्ञान पर है। इन दोनों को मूलतः एक कहा गया है। बाह्य वस्तुजगत को मिथ्या तो नहीं कहा गया पर उसे सापेक्ष रूप में सत्य कहा गया है—आंतरिक सत्य के एक पहलू के अर्थ में।

उपनिषदों का सामान्य झुकाव अद्वैतवाद की ओर है और सारे दृष्टिकोण का इरादा यही मालूम होता है कि उस समय जिन मतभेदों के कारण भयंकर वाद-विवाद हो रहे थे उन्हें किसी तरह कम किया जाए। यह समंजन का रास्ता है। जादू-टोने में दिलचस्पी या उसी किस्म के लोकोत्तर ज्ञान को सख्ती से निरुत्साहित किया गया है और बिना सच्चे ज्ञान के कर्म-कांड और पूजा-पाठ को व्यर्थ बताया गया है।

उपनिषदों की सबसे प्रमुख विशेषता है सच्चाई पर बल देना। उपनिषदों की मशहूर प्रार्थना में प्रकाश और ज्ञान की ही कामना की गई है—'असत् से मुझे सत् की ओर ले चल। अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चल। मृत्यु से मुझे अमरत्व की ओर ले चल।' बार-बार हमें एक बेचैन मन झाँकता दिखाई पड़ता है जो निरंतर किसी खोज में किसी प्रश्न का उत्तर पाने में लगा है। *ऐतरेय ब्राह्मण* में इस लंबी अनंत अनिवार्य यात्रा के बारे में एक स्तोत्र है। हर श्लोक का अंत इस टेक से होता है—'चरैवेति, चरैवेति,' – हे यात्री, इसलिए चलते रहो, चलते रहो।'

व्यक्तिवादी दर्शन के लाभ और हानियाँ

उपनिषदों में बराबर इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि कारगर रूप से प्रगति करने के लिए ज़रूरी है कि शरीर स्वस्थ हो, मन स्वच्छ हो और तन-मन दोनों अनुशासन में रहें। ज्ञानार्जन या और किसी भी तरह की उपलब्धि के लिए संयम, आत्मपीड़न और आत्मत्याग ज़रूरी है। इस प्रकार की तपस्या

का विचार भारतीय चिंतन में सहज रूप से निहित है। गांधी जी के नेतृत्व में जिन जनांदोलनों ने भारत को हिला दिया उनके पीछे जो मनोवृत्ति काम करती रही है उसकी सही समझ के लिए इस विचार को समझना ज़रूरी है।

भारतीय आर्य अपने से भिन्न औरों के विश्वासों और जीवन-शैलियों के प्रति चरम सहनशीलता के कारण उन झगड़ों को बचाते रहे जो अक्सर समाज को खंड-खंड कर देते हैं। उन्होंने एक तरह का संतुलन बनाए रखा। एक व्यापक ढाँचे के भीतर रहते हुए भी लोगों को अपनी पसंद की ज़िंदगी बसर करने की काफ़ी छूट देकर उन्होंने एक प्राचीन और अनुभवी जाति की समझदारी का परिचय दिया। उनकी ये उपलब्धियाँ बहुत अनोखी थीं।

लेकिन उनके इसी व्यक्तिवाद का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मनुष्य के सामाजिक पक्ष पर, समाज के प्रति उसके कर्तव्य पर कम ध्यान दिया। हर व्यक्ति के लिए जीवन बँटा और बँधा हुआ था। उसके मन में एक समग्र समाज की न कोई कल्पना थी, न उसके प्रति कोई दायित्व-बोध था। इस बात का भी कोई प्रयास नहीं किया गया कि वह समाज के साथ एकात्मता महसूस करे। इस विचार का विकास शायद आधुनिक युग में हुआ। किसी प्राचीन समाज में यह नहीं मिलता। इसलिए प्राचीन भारत में इसकी उम्मीद करना गैरमुनासिब होगा। व्यक्तिवाद, अलगाववाद और ऊँच-नीच पर आधारित जातिवाद पर भारत में कहीं अधिक बल दिया जाता रहा। बाद में हमारी जनता का दिमाग इस प्रवृत्ति का बंदी बन गया। हमारे पूरे इतिहास में यह एक बहुत बड़ी कमज़ोरी रही। यह कहा जा सकता है कि जाति-व्यवस्था में सख्ती के बढ़ने के साथ-साथ हमारी बौद्धिक जड़ता बढ़ती गई और जाति की रचनात्मक शक्ति धुँधलाती चली गई।

भौतिकवाद

हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हमने यूनान में, भारत में और दूसरे भागों में भी विश्व के प्राचीन साहित्य के एक बहुत बड़े हिस्से को खो दिया है। यह शायद इसलिए हुआ कि इन ग्रथों को आरंभ में ताड़-पत्रों पर या भोज-पत्रों पर लिखा गया था। कागज़ पर लिखने का चलन बाद में हुआ। बहुत-सी

प्राचीन भारतीय पुस्तकें अब तक भारत में नहीं मिलीं, पर चीनी और तिब्बती भाषा में उनके अनुवाद मिल गए हैं।

जो पुस्तकें खो गई हैं, उनमें भौतिकवाद पर लिखा गया पूरा साहित्य है, जिसकी रचना आरंभिक उपनिषदों के ठीक बाद हुई थी। इस साहित्य का हवाला अब सिर्फ़ इनकी आलोचनाओं में मिलता है या फिर भौतिकवादी सिद्धांतों के खंडन के विशद प्रयास में। फिर भी, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत में सदियों तक भौतिकवादी दर्शन का प्रचलन रहा और जनता पर उस समय उसका गहरा प्रभाव रहा। राजनीतिक और आर्थिक संगठन पर ई.पू. चौथी शताब्दी में रचित कौटिल्य की प्रसिद्ध रचना *अर्थशास्त्र* में इसका उल्लेख भारत के प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत के रूप में किया गया है।

भारत में भौतिकवाद के बहुत से साहित्य को पुरोहितों और धर्म के पुराणपंथी स्वरूप में विश्वास करने वाले लोगों ने बाद में नष्ट कर दिया। भौतिकवादियों ने विचार, धर्म और ब्रह्मविज्ञान के अधिकारियों और स्वार्थ से प्रेरित विचारों का विरोध किया। उन्होंने वेदों, पुरोहिताई और परंपरा-प्राप्त विश्वासों पर विचार करते हुए यह घोषणा की कि विश्वास को स्वतंत्र होना चाहिए और पहले से मान ली गई बातों या अतीत के प्रमाणों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उन्होंने हर तरह के जादू-टोने और अंधविश्वास की घोर निंदा की। उनका सामान्य रुख अनेक दृष्टियों से आधुनिक भौतिकवादी दृष्टिकोण जैसा था। वे अपने आपको अतीत की बेड़ियों और बोझ से मुक्त करना चाहते थे—उन तमाम बातों से जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती। साथ ही काल्पनिक देवताओं की पूजा से भी। उनके अनुसार वास्तविक अस्तित्व केवल विभिन्न रूपों में वर्तमान पदार्थ का और इस संसार का ही माना जा सकता है। इसके अलावा न कोई संसार है, न स्वर्ग और नरक है और न ही शरीर से अलग कोई आत्मा। मन एवं बुद्धि और बाकी सब चीज़ों का विकास बुनियादी तत्वों से हुआ है। नैतिक नियम मनुष्य के द्वारा बनाई गई रूढ़ियाँ मात्र हैं।

© NCERT not to be republished

महाकाव्य, इतिहास, परंपरा और मिथक

प्राचीन भारत के दो महाकाव्यों–*रामायण* और *महाभारत* को रूप ग्रहण करने में शायद सदियाँ लगी होंगी और उनमें बाद में भी टुकड़े जोड़े जाते रहे। इन ग्रंथों में भारतीय-आर्यों के आरंभ के समय का वृत्तांत है। उनकी विजयों और उस समय के गृहयुद्धों का, जब वे अपना विस्तार कर रहे थे और अपनी स्थिति मज़बूत कर रहे थे। मुझे इनके अलावा कहीं भी किन्हीं ऐसी पुस्तकों की जानकारी नहीं है जिन्होंने आम जनता के मन पर लगातार इतना व्यापक प्रभाव डाला हो। इतने प्राचीन समय में रची जाने के बावजूद, भारतीयों के जीवन पर आज भी इनका जीवंत प्रभाव दिखाई पड़ता है। ये दोनों ग्रंथ भारतीय जीवन का अंग बन गए हैं।

इनमें हमें सांस्कृतिक विकास की विभिन्न श्रेणियों के लिए ठेठ भारतीय ढंग से एक साथ सामग्री उपलब्ध है–अर्थात उच्चतम बुद्धिजीवी से लेकर साधारण अनपढ़ और अशिक्षित देहाती तक के लिए। इनके द्वारा हमें प्राचीन भारतीयों का वह रहस्य कुछ-कुछ समझ में आता है जिससे वे अनेक रूपों में विभाजित और जात-पाँत की ऊँच-नीच में बँटे समाज को एकजुट रखते थे। उनके मतभेदों को सुलझाते थे। उन्होंने लोगों में एकता का ऐसा नज़रिया पैदा करने का प्रयत्न किया जो हर तरह के भेद-भाव पर छा गया और बराबर बना रहा।

भारतीय पुराकथाएँ महाकाव्यों तक सीमित नहीं है। उनका इतिहास वैदिक काल तक जाता है और वे अनेक रूप-आकारों में संस्कृत साहित्य में प्रकट होती रही हैं। कवियों और नाटककारों ने इनका पूरा लाभ उठाते हुए अपनी कथाओं और सुंदर कल्पनाओं की रचना इनके आधार पर की है। अधिकांश पुराकथाएँ और प्रचलित कहानियाँ वीरगाथात्मक हैं। उनमें सत्य पर अड़े रहने और वचन के पालन का उपदेश दिया गया है, चाहे परिणाम कुछ भी हो। साथ ही इनमें जीवनपर्यंत और मरणोपरांत भी वफ़ादारी, साहस और लोक-हित के लिए सदाचार और बलिदान की शिक्षा दी गई है। कभी ये कहानियाँ पूर्णतः काल्पनिक होती हैं अन्यथा इनमें तथ्य और कल्पना आपस में इस प्रकार गुँथे रहते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। और

यह सम्मिश्रण काल्पनिक इतिहास का रूप ग्रहण कर लेता है, जो हमें यह भले ही न बता सके कि निश्चित रूप से क्या घटित हुआ पर ऐसी बात की सूचना देता है जिसके घटित होने पर लोग विश्वास करते हैं। ये घटनाएँ वास्तविक हों या काल्पनिक, जीवन में इनकी स्थिति जीवंत तत्वों की हो जाती थी जो उन्हें रोज़मर्रा की ज़िंदगी की एकरसता और कुरूपता से खींचकर उच्चतर क्षेत्रों की ओर ले जाती हैं।

यूनानियों, चीनियों और अरबवासियों की तरह प्राचीन काल में भारतीय इतिहासकार नहीं थे। इसी कारण हमारे लिए आज तिथियाँ निश्चित करना या सही कालक्रम निर्धारित करना कठिन हो गया है। घटनाएँ आपस में गड्ड-मड्ड हो जाती हैं। बहुत धीमी गति से आधुनिक विद्वान धैर्यपूर्वक भारतीय इतिहास की भूलभुलैया के सूत्रों की खोज कर रहे हैं। कल्हण की *राजतरंगिनी* एकमात्र प्राचीन ग्रंथ है जिसे इतिहास माना जा सकता है। यह कश्मीर का इतिहास है जिसकी रचना ईसा की बारहवीं शताब्दी में की गई थी। बाकी के लिए हमें महाकाव्यों और अन्य ग्रंथों के कल्पित इतिहास, कुछ समकालीन अभिलेखों, शिलालेखों, कलाकृतियों और इमारतों के अवशेषों, सिक्कों और संस्कृत साहित्य के विशाल संग्रह से सहायता लेनी पड़ती है। इसके साथ ही विदेशी यात्रियों के सफ़रनामों से भी सहायता मिलती है, विशेष रूप से यूनानियों और चीनियों के और कुछ बाद में आने वाले अरबों के विवरणों से।

ऐतिहासिक बोध के इस अभाव का जनता पर प्रभाव नहीं पड़ा। यहाँ की जनता ने अतीत के विषय में अपनी दृष्टि का निर्माण उन परंपरागत वृत्तांतों और पौराणिक गाथाओं और कहानियों के आधार पर कर लिया जो उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में मिली थीं। इस काल्पनिक इतिहास तथा तथ्यों और दंतकथाओं के इस मिश्रित रूप का व्यापक प्रचार हुआ। इनसे जनता को एक मज़बूत और टिकाऊ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मिली। लेकिन इतिहास की उपेक्षा के कारण हमारे दृष्टिकोण में धुँधलापन पैदा हुआ। ज़िंदगी से अलगाव पैदा हुआ और तथ्यों के बारे में दिमागी उलझन और सहज विश्वास करने की प्रवृत्ति पैदा हुई।

2018-19

© NCERT not to be republished

महाभारत

महाकाव्य के रूप में *रामायण* एक महान रचना है और लोग उससे बहुत प्रेम करते हैं; परंतु *महाभारत* का दर्जा विश्व की श्रेष्ठतम रचनाओं में है। यह कृति परंपरा और दंतकथाओं का तथा प्राचीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का विश्वकोश है। लगभग दस वर्ष बल्कि उससे भी कुछ अधिक समय से इस विषय के अधिकारी भारतीय विद्वान इसका प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने की दृष्टि से विभिन्न उपलब्ध पाठों की जाँच और मिलान करने में व्यस्त हैं। उन्होंने कुछ अंश प्रकाशित करके जारी भी कर दिए हैं लेकिन यह कार्य अब भी अधूरा है।

शायद यही समय था जब भारत में विदेशी लोग आ रहे थे और वे अपने रीति-रिवाज अपने साथ ला रहे थे। इनमें बहुत से रिवाज आर्यों से मेल नहीं खाते थे। इसलिए विरोधी विचारों और रिवाजों का विचित्र घालमेल दिखाई पड़ता है। आर्यों में स्त्रियों के अनेक विवाह का चलन नहीं था, किंतु *महाभारत* की कथा की एक विशेष नायिका एक साथ पाँच भाइयों की पत्नी है। धीरे-धीरे यहाँ पहले से मौजूद आदिवासियों के साथ नए आने वाले लोग भी आर्यों के साथ घुलमिल कर एक हो रहे थे और इस नयी स्थिति के अनुरूप वैदिक धर्म में संशोधन किया जा रहा था। इसने सबको समेटकर चलने वाला वह उदार व्यापक रूप ग्रहण कर लिया था जिससे आधुनिक हिंदू धर्म निकला।

यह इसलिए संभव हो सका क्योंकि बुनियादी नज़रिया यह जान पड़ता है कि सत्य पर किसी का एकाधिकार नहीं हो सकता। उसे देखने और उस तक पहुँचने के बहुत रास्ते हैं। इसलिए सब तरह के अलग-अलग, यहाँ तक कि विरोधी विश्वासों को भी सहन कर लिया गया।

महाभारत में हिंदुस्तान की (या जिसे दंतकथाओं के अनुसार जाति के आदि पुरुष भरत के नाम पर भारतवर्ष कहा जाता है) बुनियादी एकता पर बल देने की निश्चित कोशिश की गई है। इसका एक और पहले का नाम था आर्यावर्त्त, यानी आर्यों का देश। किंतु यह नाम मध्य-भारत में विंध्य

© NCERT not to be republished

पर्वत तक फैले उत्तर-भारत के इलाके तक सीमित था। *रामायण* की कथा दक्षिण में आर्यों के विस्तार की कहानी है। वह विराट गृहयुद्ध, जो बाद में हुआ और जिसका वर्णन *महाभारत* में किया गया है, उसके बारे में मोटे तौर से अंदाज़ लगाया गया है कि वह ईसा पूर्व चौदहवीं शताब्दी के आसपास हुआ होगा। वह लड़ाई भारत (या संभवतः उत्तरी भारत) पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए लड़ी गई थी। इसी लड़ाई से एक अखंड भारत की अवधारणा की शुरुआत हुई। इस अवधारणा के अनुसार आधुनिक अफ़गानिस्तान का बहुत बड़ा हिस्सा भारत में शामिल था। इस हिस्से को उस समय गांधार (जिससे वर्तमान कंदहार शहर का नाम पड़ा है) कहा जाता था और उसे भारत का अभिन्न हिस्सा समझा जाता था। वास्तव में इसी कारण मुख्य शासक की पत्नी का नाम गांधारी यानी गांधार की कन्या पड़ा था। दिल्ली नाम का आधुनिक शहर नहीं, बल्कि इस इलाके के निकट बसे हुए हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ नाम के पुराने शहर इसी समय भारत की राजधानी बने थे।

महाभारत में कृष्ण से संबद्ध आख्यान भी हैं और प्रसिद्ध काव्य *भगवद्गीता* भी। *गीता* के दर्शन के अलावा, इस ग्रंथ में शासन कला और सामान्य रूप से जीवन के नैतिक और आचार संबंधी सिद्धांतों पर ज़ोर दिया गया है। धर्म की इस बुनियाद के बिना न सच्चा सुख मिल सकता है और न समाज में एका रह सकता है। इसका लक्ष्य है लोकमंगल, किसी विशेष वर्ग का नहीं बल्कि पूरे विश्व का। लेकिन धर्म स्वयं सापेक्ष है और सत्य-निष्ठा, अहिंसा आदि जैसे कुछ बुनियादी सिद्धांतों को छोड़कर खुद समय और मौजूदा परिस्थितियों पर निर्भर करता है। ये सिद्धांत टिकाऊ हैं और अपरिवर्तनशील भी, परंतु इसके अलावा धर्म, जो कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों का सम्मिश्रण है, समय के साथ बदलता है। अहिंसा पर यहाँ और दूसरी जगहों पर भी जो बल दिया गया है, वह दिलचस्प है क्योंकि अहिंसा और किसी अच्छे मकसद के लिए संघर्ष करने में प्रत्यक्ष रूप से कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ता। पूरे महाकाव्य का केंद्र एक विराट युद्ध है। ज़ाहिर है इस प्रसंग में अहिंसा की अवधारणा का ज़्यादातर संबंध मकसद

2018-19

से था यानी हिंसा की मानसकिता के अभाव से, आत्मानुशासन से, क्रोध और घृणा की भावना पर नियंत्रण से था।

महाभारत एक ऐसा समृद्ध भंडार है जिसमें अनेक अनमोल चीज़ें ढूँढ़ी जा सकती हैं। यह विविधतापूर्ण, भरपूर और खदबदाती ज़िंदगी से सराबोर है। यह केवल नैतिक शिक्षा की पुस्तक नहीं है। महाभारत से मिलने वाली शिक्षा को एक वाक्य में इस रूप में सूत्रबद्ध किया गया है–"दूसरों के साथ ऐसा आचरण नहीं करो जो तुम्हें खुद अपने लिए स्वीकार्य न हो।" इसमें लोक-मंगल पर जो बल दिया गया है वह ध्यान देने योग्य है। *महाभारत* में कहा गया है–"जो बात लोक-हित में नहीं है या जिसे करते हुए तुम्हें शर्म आए उसे कभी नहीं करना चाहिए।" फिर कहा गया है–"सच्चाई, आत्म-संयम, तपस्या, उदारता, अहिंसा, धर्म का निरंतर पालन–सफलता के साधन हैं जाति और कुल नहीं।" "धर्म जीवन और अमरता से बड़ा है।" "सच्चे आनंद के लिए दुख भोगना आवश्यक है।" धन के पीछे दौड़ने वाले पर व्यंग्य किया गया है–"रेशम का कीड़ा अपने धन के बोझ से ही मरता है।" और अंत में एक जीवित और विकासशील जनता के लिए आदेश है–"असंतोष प्रगति का प्रेरक है।"

भगवद्गीता

भगवद्गीता महाभारत का अंश है परंतु उसकी अपनी अलग जगह है और वह अपने आप में मुकम्मल है। यह 700 श्लोकों का एक छोटा सा काव्य है। इसकी रचना बौद्धकाल से पहले हुई थी। तब से अब तक इसकी लोकप्रियता और प्रभाव कम नहीं हुआ। आज भी भारत में इसके प्रति पहले जैसा आकर्षण बना हुआ है। विचार और दर्शन का हर संप्रदाय इसे श्रद्धा से देखता है और अपने ढंग से इसकी व्याख्या करता है। संकट के समय, जब मनुष्य के मन को संदेह सताता है और वह कर्तव्य के बारे में दुविधाग्रस्त होता है तो वह प्रकाश और मार्गदर्शन के लिए *गीता* की ओर देखता है क्योंकि यह संकट-काल के लिए लिखी गई कविता है–राजनीतिक और सामाजिक संकट के लिए और उससे भी अधिक मनुष्य की आत्मा के

2018-19

संकट के लिए। *गीता* की असंख्य व्याख्याएँ की गईं और अब भी लगातार की जा रही हैं। आधुनिक युग के विचार और कर्म क्षेत्र के नेताओं तिलक, अरविंद घोष, गांधी सभी ने इसकी अपने ढंग से व्याख्या की है। गांधी जी ने इसे अहिंसा में अपने दृढ़ विश्वास का आधार बनाया है, औरों ने धर्म-कार्य के लिए हिंसा और युद्ध का औचित्य इसी के आधार पर सिद्ध किया है।

इस काव्य का आरंभ *महाभारत* का युद्ध आरंभ होने से पहले युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद से होता है। अर्जुन परेशान है। उसकी अंतरात्मा युद्ध और उसमें होने वाले व्यापक नरसंहार के, मित्रों और संबंधियों के संहार के विचार के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है। आखिर यह किसलिए? कौन सा ऐसा लाभ हो सकता है जो इस हानि, इस पाप का परिहार कर सके। उसकी पुरानी कसौटियाँ नाकाम हो जाती हैं, उसके मूल्य ढह जाते हैं। अर्जुन इंसान की उस पीड़ित आत्मा का प्रतीक बन जाता है जो युग-युग से कर्तव्यों और नैतिकता के तकाज़ों की दुविधा से ग्रस्त है। इस निजी बातचीत से हम एक-एक करके व्यक्ति के कर्तव्य, सामाजिक आचरण, मानव जीवन में सदाचार और सबको नियंत्रित करने वाले आध्यात्मिक दृष्टिकोण जैसे विषयों की ओर बढ़ते हैं। *गीता* में ऐसा बहुत कुछ है जो आध्यात्मिक है। इसमें मानव विकास के तीन मार्गों ज्ञान, कर्म और भक्ति के बीच समन्वय करने का प्रयास किया गया है। बाकी दो की तुलना में भक्ति पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ तक कि इसमें एक व्यक्तिगत ईश्वर का स्वरूप उभरता है, हालाँकि उसे पूर्णरूप परमेश्वर का ही अवतार माना गया है। *गीता* में मानव-अस्तित्व की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का निरूपण किया गया है। रोज़मर्रा की ज़िंदगी की व्यावहारिक समस्याएँ इसी संदर्भ में सामने आती हैं। *गीता* में जीवन के कर्तव्यों के निर्वाह के लिए कर्म का आह्वान किया गया है, अकर्मण्यता की निंदा की गई है और कहा गया है कि कर्म और जीवन को समय के उच्चतम आदर्शों के अनुरूप होना चाहिए क्योंकि ये आदर्श समय-समय पर स्वयं ही बदल सकते हैं। युग धर्म अर्थात् विशेष युग के अपने आदर्श को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

© NCERT not to be republished
2018-19

गीता का संदेश न सांप्रदायिक है और न ही किसी विशेष विचारधारा के लोगों को संबोधित करता है। इसकी दृष्टि सार्वभौमिक है। उसमें कहा गया है–"सभी रास्ते मुझ तक आते हैं।" इसी सार्वभौमिकता के कारण *गीता* सभी वर्गों और संप्रदायों के लोगों के लिए मान्य हुई। इसकी रचना के बाद ढाई हज़ार वर्षों में भारतवासी बार-बार परिवर्तन, विकास और ह्रास की प्रक्रिया से गुज़रे हैं, उन्हें एक के बाद एक, तरह-तरह के अनुभव हुए हैं। एक के बाद एक विचार सामने आए हैं, पर उन्हें हमेशा *गीता* में कोई ऐसी जीवंत चीज़ मिली है जो विकसित होते विचारों से मेल खाती रही।

प्राचीन भारत में जीवन और कर्म

बुद्ध के समय से पहले का वृत्तांत हमें जातक-कथाओं में मिलता है। इन जातक-कथाओं का वर्तमान रूप बुद्ध के कुछ समय बाद का है। जातक-कथाओं में उस समय का वर्णन है जब भारत की दो प्रधान जातियों–द्रविड़ों और आर्यों का अंतिम रूप से मेल हो रहा था। कहा जा सकता है कि जातक पुरोहित या ब्राह्मण परंपरा तथा क्षत्रिय या शासक परंपरा के विरोध में लोक-परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ग्राम-सभाएँ एक सीमा तक स्वतंत्र थीं। आमदनी का मुख्य ज़रिया लगान था। माना जाता था कि ज़मीन पर लगाया जाने वाला कर, उत्पादन में राजा का हिस्सा है। उसका भुगतान, हमेशा तो नहीं पर अक्सर गल्ले या पैदावार की शक्ल में किया जाता था। यह कर उपज के छठे भाग के करीब होता था। यह सभ्यता मुख्य रूप से कृषि केंद्रित थी और इसकी बुनियादी इकाई स्वशासित गाँव थे। राजनीतिक और आर्थिक ढाँचा इन्हीं ग्राम-समुदायों से बनाया जाता था जिन्हें दस-दस और सौ-सौ के समूह में बाँट दिया जाता था।

जातकों के वर्णनों से एक खास तरह का विकास उभरकर सामने आता है। यह विशेष दस्तकारियों से जुड़े लोगों की अलग बस्तियों और गाँवों की स्थापना थी। इस तरह एक गाँव बढ़इयों का था, एक गाँव लोहारों का था। इसी तरह और पेशों के लोगों के गाँव थे। ये खास पेशेवर लोगों के गाँव

© NCERT not to be republished

आमतौर पर शहर के पास बसे होते थे। शहर में उनके विशेष उत्पादनों की खपत हो जाती थी और बदले में उन्हें ज़िंदगी की दूसरी ज़रूरतों को पूरा करने का सामान मिल जाता था। ऐसा लगता है कि पूरा गाँव सहकारिता के उसूल पर काम करता था और बड़े ठेके लेता था। शायद इस तरह अलहदा रहने और संगठित होने से जाति प्रथा का विकास और विस्तार हुआ होगा।

जातकों में सौदागरों की समुद्री यात्राओं के हवाले भरे हुए हैं। सूखे रास्तों से रेगिस्तान को पार करके भड़ौच के पश्चिमी बंदरगाह और उत्तर में गांधार और मध्य एशिया तक कारवाँ जाया करते थे। भड़ौच से जहाज़ बेबिलोन (बावेरू) के लिए फ़ारस की खाड़ी को जाया करते थे। नदियों के रास्ते बहुत यातायात होता था। जातकों के अनुसार बेड़े बनारस, पटना, चंपा (भागलपुर) और दूसरे स्थानों से समुद्र की ओर जाते थे और वहाँ से दक्षिणी बंदरगाहों और लंका और मलय टापू तक।

भारत में लिखने की प्रथा बहुत पुरानी है। पाषाण युग के मिट्टी के पुराने बर्तनों पर ब्राह्मी लिपि के अक्षर मिले हैं। मोहनजोदड़ो में मिले शिलालेखों को अब तक पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका है। वे ब्राह्मी लेख जो पूरे भारत में मिले हैं निश्चित रूप से उस मूल लिपि में है जिससे भारत में देवनागरी और अन्य लिपियों का विकास हुआ है। अशोक के कुछ लेख ब्राह्मी लिपि में हैं, उत्तर-पश्चिम में मिलने वाले कुछ अन्य लेख खरोष्टी लिपि में हैं।

ईसा पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी में पाणिनि ने संस्कृत भाषा में अपने प्रसिद्ध व्याकरण की रचना की। उन्होंने अपने से पहले के व्याकरणों का उल्लेख किया है। उनके समय तक संस्कृत का रूप स्थिर हो चुका था और वह एक निरंतर विकासशील साहित्य की भाषा बन चुकी थी। पाणिनि आज भी संस्कृत व्याकरण पर आधिकारिक प्रमाण माना जाता है, हालाँकि बाद के वैयाकरणों ने उसमें कुछ जोड़ा भी है और उसकी व्याख्या भी की है। यह दिलचस्प है कि पाणिनि ने यूनानी लिपि का उल्लेख किया है। इससे संकेत मिलता है कि पूर्व दिशा में सिकंदर के

आने से बहुत पहले भारत और यूनान के बीच किसी-न-किसी तरह का संपर्क हो चुका था।

औषध-विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें भी थीं और अस्पताल भी। अनुश्रुति है कि भारत में औषध-विज्ञान के जनक धन्वंतरि थे। किंतु सबसे प्रसिद्ध पुरानी पाठ्यपुस्तकें ईसवी सन् की शुरू की सदियों में लिखी गईं। इनमें औषधि पर चरक की पुस्तकें हैं और शल्य-चिकित्सा पर सुश्रुत की। कहा जाता है कि चरक उन राजा कनिष्क के दरबार में राजवैद्य थे जिनकी राजधानी पश्चिमोत्तर दिशा में थी। इन पाठ्यपुस्तकों में बहुत-सी बीमारियों का ज़िक्र है और उनकी पहचान और इलाज के तरीके बताए गए हैं। इनमें शल्य-चिकित्सा, प्रसूति-विज्ञान, स्नान, पथ्य, सफ़ाई, बच्चों को खिलाने और चिकित्सा के बारे में शिक्षा को विषय बनाया गया है। लेखक का रुझान प्रयोगात्मक है और शल्य-प्रशिक्षण के दौरान मुर्दों की चीर-फाड़ कराई जाती थी। सुश्रुत ने शल्य-क्रिया के औज़ारों का ज़िक्र किया है, साथ ही ऑपरेशन का भी; जिसमें अंगों को काटना, पेट काटना, ऑपरेशन से बच्चे को जन्म दिलाना, मोतियाबिंद का ऑपरेशन आदि सब शामिल हैं। घावों के जीवाणुओं को धुआँ देकर मारा जाता था। ईसा पूर्व तीसरी चौथी सदी में जानवरों के अस्पताल भी थे। यह जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव था जिसमें अहिंसा पर बल दिया जाता था।

महाकाव्यों के युग में अक्सर वनों में एक तरह के विश्वविद्यालयों का ज़िक्र किया गया है। ये कस्बे या शहर से बहुत दूर नहीं होते थे। इनमें प्रसिद्ध विद्वानों के आसपास शिक्षा-प्रशिक्षण के उद्देश्य से लोग इकट्ठे होते थे। शिक्षा में तरह-तरह के विषय शामिल थे जिनमें सैनिक-प्रशिक्षण भी होता था। इन वनाश्रमों को इसलिए पसंद किया जाता था क्योंकि यहाँ शहरी जीवन के आकर्षणों से बचाकर विद्यार्थियों के लिए नियमित और ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना संभव होता था। कुछ वर्ष तक यहाँ प्रशिक्षण के बाद उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे वापस लौटकर गृहस्थ और नागरिक जीवन बिताएँ। इन वन-शिक्षालयों में प्राय: छोटे-छोटे गुट रहते थे, गोकि इस बात

© NCERT not to be republished

के संकेत मिलते हैं कि लोकप्रिय अध्यापक बड़ी संख्या में विद्यार्थियों को आकर्षित करते थे।

बनारस हमेशा शिक्षा का केंद्र रहा। बुद्ध के समय में भी वह प्राचीन केंद्र माना जाता था। किंतु उत्तर-पश्चिम में, आधुनिक पेशावर के पास एक प्राचीन और प्रसिद्ध विश्वविद्यालय तक्षशिला या तक्षिला था। यह विश्वविद्यालय विशेष रूप से विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र और कलाओं के लिए मशहूर था और भारत के दूर-दूर के हिस्सों से लोग यहाँ आया करते थे। तक्षशिला का स्नातक होना सम्मान और विशेष योग्यता की बात समझी जाती थी। जो चिकित्सक यहाँ के आयुर्विज्ञान विद्यालय से पढ़कर निकलते थे, उनकी बड़ी कद्र होती थी। कहा जाता है कि जब कभी बुद्ध बीमार पड़ते थे तो उनके भक्त इलाज के लिए एक मशहूर चिकित्सक को बुलाते थे, जो तक्षशिला का स्नातक था। ईसा पूर्व छठी-सातवीं शताब्दी के महान वैयाकरण पाणिनि ने भी यहीं शिक्षा पाई थी।

इस तरह तक्षशिला बुद्ध से पहले ब्राह्मण शिक्षा-पद्धति का विश्वविद्यालय था। बौद्ध-काल में यह बौद्ध-ज्ञान का भी केंद्र बन गया था। सारे भारत और सीमा-पार से बौद्ध विद्यार्थी यहाँ खिंचे चले आते थे। यह मौर्य साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी सूबे का मुख्यालय था।

उस सुदूर अतीत के भारतीय कैसे थे? हमारे लिए इतने पुराने और हमसे इतने भिन्न समय के बारे में कोई धारणा बनाना कठिन है। फिर भी हमें जो जानकारियाँ उपलब्ध हैं उसके आधार पर एक धुँधली-सी तसवीर उभर कर सामने आती है। वे खुले दिल के, आत्मविश्वासी और अपनी परंपराओं पर गर्व करने वाले लोग थे। रहस्य की खोज में हाथ-पाँव मारने वाले, प्रकृति और मानव जीवन के बारे में बहुत से प्रश्नों से भरे, अपनी बनाई हुई मर्यादा और मूल्यों को महत्त्व देने वाले, पर जीवन में सहज भाव से आनंद लेने वाले और मौत का लापरवाही से सामना करने वाले लोग थे।

महावीर और बुद्ध – वर्ण व्यवस्था

मथुरा से प्राप्त महावीर की लगभग तीसरी शताब्दी ईसवी की एक मूर्ति

जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों वैदिक धर्म से कटकर अलग हुए थे और उसकी शाखाएँ थे। पर उन्होंने वेदों को प्रमाण नहीं माना। तमाम और बातों में सबसे बुनियादी बात यह है कि आदि कारण के बारे में वे या तो मौन हैं या उसके अस्तित्व से इंकार करते हैं। दोनों अहिंसा पर बल देते हैं और ब्रह्मचारी भिक्षुओं और पुरोहितों के संघ बनाते हैं। उनके नज़रिए एक हद तक यथार्थवादी और बुद्धिवादी हैं। जैन-धर्म का एक बुनियादी सिद्धांत यह है कि सत्य हमारे दृष्टिकोण की सापेक्षता में होता है। इसमें जीवन और विचार में तपस्या के पहलू पर बल दिया गया है।

जैन धर्म के संस्थापक महावीर और बुद्ध समकालीन थे और दोनों क्षत्रिय थे। बुद्ध की मृत्यु ई.पू. 544 में अस्सी वर्ष की आयु में हुई और तभी बौद्ध संवत् शुरू हुआ। इतिहासकारों ने बाद की तारीख यानी ई.पू. 487 दी। यह अजीब संयोग है कि मैं ये पंक्तियाँ बौद्ध संवत् 2488 की पहली तारीख को वैशाखी पूर्णिमा के दिन लिख रहा हूँ। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि बुद्ध का जन्म वैशाख (मई-जून) के महीने में इसी पूर्णिमा के दिन हुआ था, इसी तिथि को उन्हें बोध प्राप्त हुआ था और अंत में उनका निर्वाण भी इसी तिथि को हुआ था।

बुद्ध में लोक-प्रचलित धर्म, अंधविश्वास, कर्म-कांड एवं पुरोहित-प्रपंच और उनके साथ जुड़े हुए निहित स्वार्थों पर हमला करने का साहस था। उन्होंने आध्यात्मिक, धर्म वैज्ञानिक नज़रिए की तथा चमत्कारों, अलौकिक व्यापारों आदि की भी निंदा की। उनका आग्रह तर्क, विवेक और अनुभव पर था। उनका बल नैतिकता पर था, उनकी पद्धति

© NCERT not to be republished

तक्षशिला में बनी बुद्ध की प्रतिमा

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की थी, ऐसा मनोविज्ञान जिसमें आत्मा के लिए जगह नहीं थी।

बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था पर सीधा वार नहीं किया, लेकिन अपनी संघ-व्यवस्था में उन्होंने इसे कोई स्थान नहीं दिया।

यह विचित्र और महत्त्वपूर्ण बात है कि भारतीय इतिहास के लंबे दौर में पुरोहित-प्रपंच और वर्ण-व्यवस्था की कठोरता के विरुद्ध बड़े लोगों ने

बार-बार चेतावनी दी है, फिर भी धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था का विकास और विस्तार हुआ है। इसने भारतीय जीवन के हर पहलू को अपने शिकंजे में जकड़ लिया है। जात के विरोधियों के बहुत से अनुयायी हुए, पर समय के साथ उनके समुदाय की अपनी एक अलग जात बन गई। जैन धर्म, जो अपने मूल धर्म के विरोध में खड़ा हुआ था, जात के प्रति सहिष्णु था और खुद उसने अपने को उसके अनुरूप बना लिया था। इसलिए आज भी यह ज़िंदा है और जारी है तो लगभग हिंदू धर्म की एक शाखा के रूप में। बौद्ध धर्म ने जाति-व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। वह अपने विचारों और दृष्टिकोण में ज़्यादा स्वतंत्र रहा। अंतत: वह भारत से बाहर निकल गया, गोकि भारत और हिंदूवाद पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

बुद्ध की शिक्षा

बुद्ध का संदेश उन भारतीयों के लिए बहुत नया और मौलिक था जो ब्रह्मज्ञान की गुत्थियों में डूबे रहते हैं। बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, "सभी देशों में जाओ और इस धर्म का प्रचार करो।" इस धर्म में सब जातियाँ आकर इस तरह मिल जाती हैं जैसे समुद्र में नदियाँ। उन्होंने सबके लिए करुणा का, प्रेम का संदेश दिया क्योंकि "इस संसार में घृणा का अंत घृणा से नहीं होता, घृणा का अंत प्रेम से होता है।" अत: "मनुष्य को क्रोध पर दया से और बुराई पर भलाई से काबू पाना चाहिए।" यह सदाचार और आत्मानुशासन का आदर्श था। "युद्ध में भले ही कोई हज़ार आदमियों पर विजय पा ले, पर जो अपने पर विजय पाता है, सच्चा विजेता वही होता है। मनुष्य की जाति जन्म से नहीं बल्कि केवल कर्म से तय होती है।"

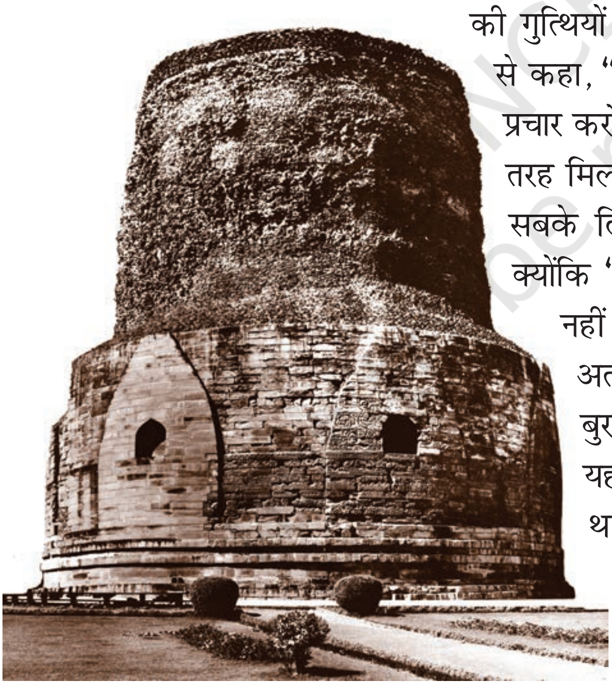

सारनाथ स्तूप– बुद्ध ने अपना सर्वप्रथम उपदेश यहीं दिया था

उन्होंने यह उपदेश न किसी धर्म के समर्थन के आधार पर और न ईश्वर या परलोक का हवाला देकर दिया। उन्होंने विवेक, तर्क और अनुभव का सहारा लिया और लोगों से कहा कि वे अपने मन के भीतर सत्य की खोज करें। सत्य की जानकारी का अभाव सब दुखों का कारण है। ईश्वर या परब्रह्म का अस्तित्व है या नहीं, उन्होंने नहीं बताया। वे न उसे स्वीकार करते हैं न इंकार। जहाँ जानकारी संभव नहीं है वहाँ हमें निर्णय नहीं देना चाहिए। इसलिए हमें अपने आपको उन्हीं चीज़ों तक सीमित रखना चाहिए जिन्हें हम देख सकते हैं और जिनके बारे में हम निश्चित जानकारी हासिल कर सकते हैं।

बुद्ध की पद्धति मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की पद्धति थी और इस बात की जानकारी हैरत में डालने वाली है कि अधुनातन विज्ञानों के बारे में उनकी अंतर्दृष्टि कितनी गहरी थी।

जीवन में वेदना और दुख पर बौद्ध धर्म में बहुत बल दिया गया है। बुद्ध ने जिन 'चार आर्य सत्यों' का निरूपण किया है उनका संबंध दुख का कारण, दुख के अंत की संभावना और उसे समाप्त करने के उपाय से है।

दुख की इस स्थिति के अंत से 'निर्वाण' की प्राप्ति होती है। बुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग था। यह अतिशय भोग और अतिशय तप के बीच का रास्ता है। अपने शरीर को कष्ट देने के अनुभव के बाद उन्होंने कहा, "जो व्यक्ति अपनी शक्ति खो देता है वह सही रास्ते पर नहीं बढ़ सकता।" यह मध्यम मार्ग आर्यों का अष्टांग मार्ग था–सही विश्वास, सही आकांक्षाएँ, सही वचन, सही आचरण, जीवनयापन का सही ढंग, सही प्रयास, सही विचार और सही आनंद।

बुद्ध ने अपने शिष्यों को वही बातें बताईं जो उनके विचार से वे लोग समझ सकते थे और उनके अनुसार आचरण कर सकते थे। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने अपने हाथ में कुछ सूखी पत्तियाँ लेकर अपने प्रिय शिष्य आनंद से पूछा कि उनके हाथ में जो पत्तियाँ हैं, उनके अलावा भी कहीं कोई है या नहीं? आनंद ने उत्तर दिया–"पतझड़ की पत्तियाँ सब तरफ़ गिर रही हैं और वे इतनी हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती।" तब बुद्ध ने

2018-19

कहा–"इसी तरह मैंने तुम्हें मुट्ठी भर सत्य दिया है, किंतु इसके अलावा कई हज़ार और सत्य ऐसे हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।"

बुद्ध-कथा

'बुद्ध' की वह संकल्पना जिसे प्यार से भरे अनगिनत हाथों ने पत्थर, संगमरमर और काँसे में ढालकर आकार दिया, भारतीयों के विचारों की समग्र आत्मा की, या कम-से-कम उसके एक तेजस्वी पक्ष का प्रतीक है। कमल के फूल पर बैठे हुए–शांत और धीर, वासनाओं और लालसाओं से परे, इस संसार के तूफ़ानों और संघर्षों से दूर वे इतनी दूर, पहुँच से इतने परे मालूम होते हैं जैसे उन्हें पाना असंभव हो। लेकिन जब हम उन्हें दोबारा देखते हैं तो उनकी आकृति जीवन-शक्ति से भरी जान पड़ती है। युग पर युग बीतते जाते हैं पर बुद्ध हमसे बहुत दूर नहीं मालूम होते। उनकी वाणी हमारे कान में धीमे स्वर से कहती है कि हमें संघर्ष से भागना नहीं चाहिए बल्कि शांत-दृष्टि से उनका मुकाबला करना चाहिए तथा जीवन में विकास और प्रगति के और बड़े अवसरों को देखना चाहिए।

बुद्ध के बारे में सोचते हुए आज भी हम एक जीती-जागती, थरथराहट पैदा करने वाली अनुभूति से गुज़रते हैं। उस राष्ट्र और जाति के पास निश्चय ही समझदारी और आंतरिक शक्ति की गहरी संचित निधि होगी जो ऐसे भव्य आदर्श को जन्म दे सकती है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य – मौर्य साम्राज्य की स्थापना

भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार धीरे-धीरे हुआ। मूल रूप में यह क्षत्रिय आंदोलन था और शासक वर्ग तथा पुरोहितों के बीच संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता था।

पश्चिमोत्तर प्रदेश पर सिकंदर के आक्रमण से इस विकास को आगे बढ़ाने में विशेष मदद मिली और दो ऐसे विलक्षण व्यक्ति सामने आए जिन्होंने बदलती हुई परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए उन्हें अपनी मर्ज़ी के मुताबिक ढाल लिया। ये थे चंद्रगुप्त मौर्य और उनके मित्र, मंत्री और सलाहकार चाणक्य। इन दोनों का मेल बहुत कारगर साबित हुआ। दोनों मगध के उस शक्तिशाली नंद साम्राज्य से निकाल दिए गए थे जिसकी राजधानी

पाटलीपुत्र (आधुनिक पटना) थी। दोनों पश्चिमोत्तर प्रदेश में तक्षशिला गए और उन यूनानियों के संपर्क में आए जिन्हें सिकंदर ने वहाँ नियुक्त किया था। चंद्रगुप्त की भेंट खुद सिकंदर से हुई थी।

चंद्रगुप्त और चाणक्य ने राष्ट्रीयता का पुराना पर चिर नवीन नारा बुलंद करके विदेशी आक्रमणकारी के विरुद्ध लोगों को उत्तेजित किया। यूनानी सेना को खदेड़कर तक्षशिला पर अधिकार कर लिया गया। राष्ट्रीयता की पुकार सुनकर बहुत से लोग चंद्रगुप्त के साथ हो गए और उन्हें साथ लेकर चंद्रगुप्त पटना तक पहुँच गया। सिकंदर की मृत्यु के दो ही वर्ष में उसने पाटलीपुत्र पर अधिकार करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। लिखित इतिहास में पहली बार एक विराट केंद्रीय राज्य की स्थापना हुई। पाटलीपुत्र इस महान साम्राज्य की राजधानी थी।

यह नया राज्य था कैसा? सौभाग्य से हमें इसका पूरा ब्यौरा मिलता है–भारतीय भी और यूनानी भी। एक विवरण सिल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज़ ने छोड़ा है और दूसरा है कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* जो कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण 'राजनीतिशास्त्र' है और उसी समय की रचना है। कौटिल्य चाणक्य का ही दूसरा नाम है। वह हर दृष्टि से बड़ा आदमी था – बुद्धिमानी में भी और कर्मठता में भी। इस युग के बारे में एक प्राचीन भारतीय नाटक है – *मुद्राराक्षस*। इस नाटक में चाणक्य की तसवीर उभरती है। साहसी और षड़यंत्री, अभिमानी और प्रतिशोधी, जो न कभी अपमान को भूलता है न अपने लक्ष्य को ओझल होने देता है। दुश्मन को धोखा देने और पराजित करने के लिए वह हर तरीके का इस्तेमाल करता है। वह साम्राज्य की बागडोर हाथ से सँभाले रहता है और सम्राट को स्वामी की तरह नहीं बल्कि एक प्रिय शिष्य की तरह देखता है। अपने जीवन में वह सादा और तपस्वी है, ऊँचे पदों की शान-शौकत में उसकी दिलचस्पी नहीं है। जब वह अपनी शपथ पूरी कर लेता है और अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है तो सेवानिवृत्त होकर चिंतन-मनन का जीवन बिताना चाहता है। अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए शायद ही कोई ऐसी बात रही हो जिसे करने में चाणक्य को किसी प्रकार का संकोच होता।

© NCERT not to be republished

2018-19

चाणक्य के *अर्थशास्त्र* में व्यापक स्तर पर अनेकानेक विषयों पर लिखा गया है। उसमें शासन के सिद्धांत और व्यवहार के लगभग सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। इसमें चंद्रगुप्त की विराट सेना का विस्तार से वर्णन किया गया है। चाणक्य का कहना है कि केवल संख्या से कुछ नहीं होता, अनुशासन और उचित नेतृत्व के अभाव में वे बोझ बन जाते हैं। इसमें रक्षा और किलेबंदी के बारे में भी बताया गया है।

पुस्तक में चर्चित अन्य विषयों में व्यापार और वाणिज्य, कानून और न्यायालय, नगर-व्यवस्था, सामाजिक रीति-रिवाज, विवाह और तलाक, स्त्रियों के अधिकार, कर और लगान, कृषि, खानों और कारखानों को चलाना, दस्तकारी, मंडियाँ, बागवानी, उद्योग-धंधे, सिंचाई और जलमार्ग, जहाज़ और जहाज़रानी, निगमें, जन-गणना, मत्स्य-उद्योग, कसाई खाने, पासपोर्ट और जेल – सब शामिल हैं। इसमें विधवा विवाह को मान्यता दी गई है और विशेष परिस्थितियों में तलाक को भी।

अपने राज्याभिषेक के समय राजा को इस बात की शपथ लेनी पड़ती थी कि वह प्रजा की सेवा करेगा – उसका सुख उसकी प्रजा के सुख में है, उसकी खुशहाली में है, वह उसी को अच्छा समझेगा जो उसकी प्रजा को अच्छा लगेगा, उसे नहीं जो खुद को अच्छा लगे। यदि राजा उत्साही होगा, तो प्रजा समान रूप से उत्साही होगी। सार्वजनिक काम राजा की मर्ज़ी के मोहताज नहीं होते, उसे खुद हमेशा इनके लिए तैयार रहना चाहिए। यदि कोई राजा अनीति करता है तो उसकी प्रजा को अधिकार है कि उसे हटाकर किसी दूसरे को उसकी जगह बैठा दे।

अशोक

273 ई.पू. में अशोक इस महान साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इससे पहले वह पश्चिमोत्तर प्रदेश का शासक रह चुका था, जिसकी राजधानी, विश्वविद्यालय की नगरी तक्षशिला थी। उस समय साम्राज्य के भीतर भारत का बहुत बड़ा भाग आ गया था और उसका विस्तार मध्य एशिया तक हो चुका था। केवल

© NCERT not to be republished

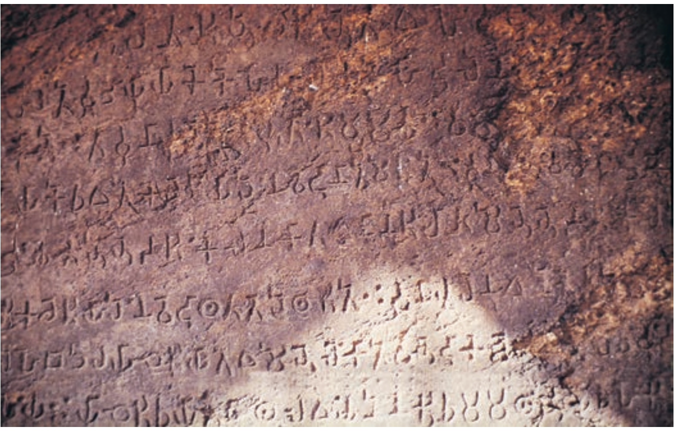

अशोक का एक अभिलेख

दक्षिण-पूर्व और दक्षिण का एक भाग उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आ पाए थे। संपूर्ण भारत को एक शासन व्यवस्था के मातहत इकट्ठा करने के पुराने सपने ने अशोक को प्रेरित किया और उसने तत्काल पूरबी तट के कलिंग प्रदेश को जीतने की ठान ली।

कलिंग के लोगों के बहादुरी से मुकाबला करने के बावजूद अशोक की सेना जीत गई। इस युद्ध में भयंकर कत्लेआम हुआ। जब इस बात की खबर अशोक को मिली तो उसे बहुत पछतावा हुआ और युद्ध से विरक्ति हो गई। बुद्ध की शिक्षा के प्रभाव से उसका मन दूसरे क्षेत्रों में विजय हासिल करने और साहसिक काम करने की ओर घूम गया।

अशोक के विचारों और कर्मों के बारे में हमें फ़रमानों से जानकारी मिलती है जो उसने जारी किए और जो पत्थर और धातु पर खोदे गए। ये फ़रमान पूरे भारत में फैले हैं और अब भी मिलते हैं।

कलिंग को साम्राज्य में मिलाए जाने के ठीक बाद ही महामहिम सम्राट ने धर्म के नियमों का उत्साहपूर्वक पालन, उन नियमों के प्रति प्रेम और उसको (धर्म को) अंगीकार करना आरंभ कर दिया। उनके एक फ़रमान में कहा गया है कि अशोक अब आगे किसी प्रकार की हत्या या बंदी बनाए जाने को सहन नहीं करेगा। कलिंग में मरने और बंदी बनाए जाने वाले लोगों के सौवें -हज़ारवें हिस्से को भी नहीं। सच्ची विजय कर्तव्य और धर्म पालन करके लोगों के हृदय को जीतने में है।

फ़रमान में आगे कहा गया है—"इसके अलावा, यदि कोई उनके साथ बुराई करेगा तो उसे भी जहाँ तक संभव होगा महामहिम सम्राट को झेलना होगा। महामहिम सम्राट की यह आकांक्षा है कि जीव-मात्र की रक्षा हो, उनमें आत्म-संयम हो, उन्हें मन की शांति और आनंद प्राप्त हो।"

2018-19

© NCERT not to be republished

इस अद्‌भुत शासक ने, जिसे आज भी भारत और एशिया के बहुत से दूसरे भागों में प्यार से याद किया जाता है, अपने आपको बुद्ध की शिक्षा के प्रचार में, नेकी और सद्‌भाव के काम में तथा प्रजा के हित के लिए सार्वजनिक कार्यों के प्रति समर्पित कर दिया। उसने ऐलान कर दिया था कि वह इनके लिए हमेशा तैयार है। हर स्थान पर और हर समय, सरकारी कर्मचारी जनता के कार्यों के बारे में उसे बराबर सूचना देते रहें, चाहे जिस समय और जहाँ भी हो वह लोक-हित के लिए अवश्य काम करेगा।

अशोक के समय में निर्मित साँची का स्तूप

खुद कट्टर बौद्ध होने पर भी उसने दूसरे धर्मों को बराबर आदर और महत्त्व दिया।

अशोक बहुत बड़ा निर्माता भी था। उसने अपनी कुछ बड़ी इमारतों को बनाने में मदद के लिए विदेशी कारीगरों को रख छोड़ा था। यह नतीजा एक जगह इकट्ठे बने स्तंभों के डिज़ाइन से निकाला गया है जो पर्सिपोलिस की याद दिलाते हैं। लेकिन इस शुरू की मूर्तिकला और दूसरे अवशेषों में भी भारतीय कला-परंपरा की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं।

इकतालीस साल तक अनवरत शासन करने के बाद ई.पू. 232 में अशोक की मृत्यु हो गई। एच.जी. वेल्स ने अपनी *आउटलाइन ऑफ़ हिस्ट्री* में उसके बारे में लिखा है कि बादशाहों के दसियों हज़ार नामों में जिनसे इतिहास के पृष्ठ भरे हैं, जिनमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे, शहंशाह और नामीगिरामी शासक शामिल हैं, अशोक का नाम अकेला सितारे की तरह चमक रहा है। वोल्गा से जापान तक आज भी उसका नाम आदर से लिया जाता है।

युगों का दौर

गुप्त शासन में राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद

मौर्य साम्राज्य का अवसान हुआ और उसकी जगह शुंग वंश ने ले ली जिसका शासन अपेक्षाकृत बहुत छोटे क्षेत्र पर था। दक्षिण में बड़े राज्य उभर रहे थे और उत्तर में काबुल से पंजाब तक बाख्त्री या भारतीय-यूनानी फैल गए थे। मेनांडर के नेतृत्व में उन्होंने पाटलीपुत्र तक पर हमला किया किंतु उनकी हार हुई। खुद मेनांडर पर भारतीय चेतना और वातावरण का प्रभाव पड़ा और वह बौद्ध हो गया। वह राजा मिलिंद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बौद्ध आख्यानों में उसकी लोक-प्रसिद्धि लगभग एक संत के रूप में हुई। भारतीय और यूनानी संस्कृतियों के मेल से अफ़गानिस्तान और सरहदी सूबे के क्षेत्र में गांधार की यूनानी-बौद्ध कला का जन्म हुआ।

हिंद-यूनानी शासक मेनांडर का एक सिक्का

भारत के मध्य प्रदेश में सांची के निकट बेसनगर में ग्रेनाइट पत्थर की एक लाट है जो हेलिओदो स्तंभ के नाम से प्रसिद्ध है। इसका समय ई.पू. पहली शताब्दी है और इस पर संस्कृत का एक लेख खुदा है। इससे हमें उन यूनानियों के भारतीयकरण की झलक मिलती है जो सरहद पर आए थे और भारतीय संस्कृति को जज़्ब कर रहे थे।

मध्य-एशिया में शक (सीदियन) लोग ऑक्सस (अक्षु) नदी की घाटी में बस गए थे। यूइ-ची सुदूर पूरब से आए और उन्होंने इन लोगों को उत्तर-भारत की ओर धकेल दिया। ये शक बौद्ध और हिंदू हो गए। यूइ-चियों में से एक दल कुषाणों का था। उन्होंने सब पर अधिकार करके उत्तर-भारत

© NCERT not to be republished

तक अपना विस्तार कर लिया। उन्होंने शकों को पराजित करके उन्हें दक्षिण की ओर खदेड़ा। शक काठियावाड़ और दक्खिन की ओर चले गए। इसके बाद कुषाणों ने पूरे उत्तर-भारत पर और मध्य-एशिया के बहुत बड़े भाग पर अपना व्यापक और मज़बूत साम्राज्य कायम किया। उनमें से कुछ ने हिंदू धर्म को अपना लिया लेकिन अधिकांश लोग बौद्ध हो गए। उनका सबसे प्रसिद्ध शासक कनिष्क उन बौद्ध कथाओं का भी नायक है, जिनमें उसके महान कारनामों और सार्वजनिक कामों का ज़िक्र किया गया है। उसके बौद्ध होने के बावजूद ऐसा लगता है कि राज्य-धर्म का स्वरूप कुछ मिला-जुला था जिसमें ज़रथुष्ट्र के धर्म का भी योगदान था। यह सरहदी सूबा, जो कुषाण साम्राज्य कहलाया, उसकी राजधानी आधुनिक पेशावर के निकट थी। तक्षशिला का पुराना विश्वविद्यालय भी उसके निकट था। वह बहुत से राष्ट्रों से आने वाले लोगों के मिलने का स्थान बन गया। यहाँ भारतीयों की मुलाकात सीदियनों, यूइ-चियों, ईरानियों, बाख्त्री-यूनानियों, तुर्कों और चीनियों से होती थी। ये विभिन्न संस्कृतियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करती थीं। इनके आपसी प्रभावों के परिणामस्वरूप मूर्तिकला और चित्रकला की एक सशक्त शैली ने जन्म लिया। इतिहास की दृष्टि से, इसी ज़माने में चीन और भारत के बीच पहले संपर्क हुए और 64 ई. में यहाँ चीनी राजदूत आए। उस समय चीन से भारत को जो तोहफ़े मिले उनमें आड़ू और नाशपाती के पेड़ थे। गोबी रेगिस्तान के ठीक किनारे-किनारे तूर्फ़ान और कूचा में भारतीय, चीनी और ईरानी संस्कृतियों का अद्भुत मेल हुआ।

कुषाण काल में बौद्ध धर्म दो संप्रदायों में बँट गया—महायान और हीनयान। उन दोनों के बीच मतभेद उठ खड़े हुए। भारतीय परंपरा के अनुसार बड़ी-बड़ी सभाओं में इन समस्याओं पर विवाद आयोजित किए जाने लगे। इन बहसों में सारे देश के प्रतिनिधि भाग लेते थे। इन विवादों में एक नाम सबसे अलग और विशिष्ट दिखाई पड़ता है। यह नाम नागार्जुन का है जो ईसा की पहली शताब्दी में हुए। उनका व्यक्तित्व महान था। वे बौद्ध शास्त्रों और भारतीय दर्शन दोनों के बहुत बड़े विद्वान थे। उन्हीं के कारण भारत में

2018-19

महायान की विजय हुई। महायान के ही सिद्धांतों का प्रचार चीन में हुआ। लंका और बर्मा (वर्तमान श्रीलंका और म्यांमार) हीनयान को मानते रहे।

कुषाणों ने अपना भारतीयकरण कर लिया था। वे भारतीय संस्कृति के संरक्षक हो गए थे, फिर भी राष्ट्रीय विरोध की एक अंतर्धारा उनके शासन के खिलाफ़ बराबर चल रही थी। बाद में जब भारत में नयी जातियों का आगमन हुआ, तो ईसा की चौथी शताब्दी के आरंभ में विदेशियों का विरोध करने वाले इस राष्ट्रीय आंदोलन ने निश्चित रूप ग्रहण कर लिया। एक दूसरे महान शासक ने, जिसका नाम भी चंद्रगुप्त था, नए हमलावरों को मार भगाया और एक शक्तिशाली विशाल साम्राज्य कायम किया।

इस तरह ई. 320 में गुप्त-साम्राज्य का युग आरंभ हुआ। इस साम्राज्य में एक के बाद एक कई महान शासक हुए, जो युद्ध और शांति, दोनों कलाओं में सफल हुए। लगातार हमलों ने विदेशियों के प्रति प्रबल विरोधी भावना को जन्म दिया और देश के पुराने ब्राह्मण-क्षत्रिय तत्वों को मातृभूमि और संस्कृति दोनों की रक्षा के बारे में सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा। जो विदेशी तत्व यहाँ घुलमिल गए थे, उन्हें स्वीकार कर लिया गया, लेकिन हर नए आने वाले को प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा और पुराने ब्राह्मण आदर्शों के आधार पर सजातीय राज्य कायम करने का प्रयास किया गया। लेकिन क्रमशः इन आदर्शों में ऐसी कट्टरता विकसित होने लगी थी जो इनके स्वभाव के विपरीत थी।

आरंभ में जब आर्य यहाँ उस स्थान पर आए जिसे उन्होंने आर्यावर्त्त या भारतवर्ष कहा था तब भारतवर्ष के सामने समस्या यह थी कि इस नयी जाति और संस्कृति के बीच समन्वय कैसे कायम किया जाए। भारत ने इस स्थिति का सामना करते हुए मिली-जुली भारतीय-आर्य संस्कृति की मज़बूत बुनियाद पर निर्मित एक स्थायी हल प्रस्तुत किया। दूसरे विदेशी तत्व यहाँ आए और जज़्ब होते गए। लेकिन समय-समय पर अजीब रस्मो-रिवाज वाले अजनबी लोगों के हमलों ने उसे हिला दिया। वह इन हमलों को अनदेखा नहीं कर सकता था क्योंकि इन्होंने केवल उसके राजनीतिक ढाँचे को ही

2018-19

नहीं तोड़ा बल्कि उसके सांस्कृतिक आदर्शों और सामाजिक ढाँचे के लिए भी खतरा पैदा कर दिया। इनके विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई उसका रूप मूलतः राष्ट्रवादी था। उसमें राष्ट्रवाद की शक्ति भी थी और संकीर्णता भी। धर्म और दर्शन, इतिहास और परंपरा, रीति-रिवाज और सामाजिक ढाँचा, जिसके व्यापक घेरे में उस समय के भारत के जीवन के सभी पहलू आते थे, जिसे ब्राह्मणवाद या हिंदूवाद कहा गया, वह इस राष्ट्रवाद का प्रतीक बना। यह दरअसल राष्ट्रीय धर्म था, जिससे वे तमाम गहरी जातीय और सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ प्रभावित हुईं जो आज हर जगह राष्ट्रीयता की बुनियाद में मौजूद हैं। जिस बौद्ध धर्म का जन्म भारतीय विचार से हुआ था, उसके लिए भारत वह पुण्य भूमि थी जहाँ बुद्ध ने जन्म लिया, उपदेश दिया और वहीं उनका निर्वाण हुआ। पर बौद्ध धर्म मूल रूप में अंतरराष्ट्रीय था, विश्वधर्म था। जैसे-जैसे उसका विकास और विस्तार हुआ वैसे-वैसे उसका यह रूप और विकसित होता गया। इसलिए पुराने ब्राह्मण धर्म के लिए स्वाभाविक था कि वह बार-बार राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रतीक बने।

समुद्रगुप्त वीणा बजाते हुए—एक सिक्का

यह धर्म और दर्शन भारत के भीतरी धर्मों और जातीय तत्वों के प्रति तो सहनशील और उदार था पर विदेशियों के प्रति उसकी उग्रता बराबर बढ़ती जाती थी और वह अपने आपको उनके प्रभाव से बचाने की कोशिश करता था। ऐसा करने से उनमें जो राष्ट्रवादी चेतना पैदा हुई थी वह अक्सर साम्राज्यवाद की शक्ल अख्तियार करने लगती थी। गुप्त शासकों का समय बहुत प्रबुद्ध, शक्तिशाली, अत्यंत सुसंस्कृत और तेजस्विता से भरपूर था। फिर भी उसमें साम्राज्यवादी प्रवृत्तियाँ विकसित हो गईं। इनके बहुत बड़े शासक समुद्रगुप्त को भारत का नेपोलियन कहा गया है। साहित्य और कला की दृष्टि से यह बहुत शानदार समय था।

चौथी शताब्दी के आरंभ से लेकर डेढ़ सौ वर्ष तक गुप्त वंश ने उत्तर में एक बड़े शक्तिशाली और समृद्ध राज्य पर शासन किया। इसके बाद

2018-19

लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक उनके उत्तराधिकारी अपने बचाव में लगे रहे और साम्राज्य सिकुड़कर लगातार छोटा होता चला गया। मध्य एशिया से नए आक्रमणकारी लगातार भारत पर हमला कर रहे थे। ये 'गोरे हूण' कहलाते थे जिन्होंने मुल्क में बड़ी लूटमार की। अंततः यशोवर्मन के नेतृत्व में संगठित होकर उन पर आक्रमण किया गया और उनके सरदार मिहिरगुल को बंदी बना लिया गया। लेकिन गुप्तों के वंशज बालादित्य ने उसके प्रति उदारता का व्यवहार किया और उसे भारत से लौट जाने दिया। मिहिरगुल ने इसके बदले लौटकर अपने मेहरबान पर कपटपूर्ण हमला कर दिया।

उत्तर भारत में हूणों का शासन बहुत थोड़े समय रहा—लगभग आधी-शताब्दी। उनमें से बहुत से लोग देश में छोटे-छोटे सरदारों के रूप में यहीं रह गए। वे कभी-कभी परेशानी पैदा करते थे और भारतीय जन समुदाय के सागर में जज़्ब होते जाते थे। इनमें से कुछ सरदार सातवीं शताब्दी के आरंभ में आक्रमणकारी हो गए। उनका दमन करके कन्नौज के राजा हर्षवर्धन ने उत्तर से लेकर मध्य भारत तक एक बहुत शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। वे कट्टर बौद्ध थे। उनका महायान संप्रदाय अनेक रूपों में हिंदूवाद से मिलता-जुलता था। उन्होंने बौद्ध और हिंदू दोनों धर्मों को बढ़ावा दिया। उन्हीं के समय में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुआन त्सांग (या युआन च्वान) भारत आया था (629 ई. में)। हर्षवर्धन कवि और नाटककार था। उसने अपने दरबार में बहुत से कलाकारों और कवियों को इकट्ठा किया और अपनी राजधानी उज्जयिनी को सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रसिद्ध केंद्र बनाया था। हर्ष की मृत्यु 648 ई. में हुई थी। यह लगभग वह समय था जब अरब के रेगिस्तानों से अफ्रीका और एशिया में फैलने के लिए इस्लाम सिर उठा रहा था।

दक्षिण भारत

दक्षिण भारत में मौर्य साम्राज्य के सिमटकर अंत हो जाने के एक हज़ार साल से भी ज़्यादा समय तक बड़े-बड़े राज्य फूले-फले।

दक्षिण भारत अपनी बारीक दस्तकारी और समुद्री व्यापार के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध था। उसकी गिनती समुद्री ताकतों में होती थी और

not to be republished © NCERT

इनके जहाज़ दूर देशों तक माल पहुँचाया करते थे। वहाँ यूनानियों की बस्तियाँ थीं और रोमन सिक्के भी वहाँ पाए गए।

उत्तरी भारत पर बार-बार होने वाले हमलों का सीधा प्रभाव दक्षिण पर नहीं पड़ा। इसका परोक्ष प्रभाव यह ज़रूर हुआ कि बहुत से लोग उत्तर से दक्षिण में जाकर बस गए। इन लोगों में राजगीर, शिल्पी और कारीगर भी शामिल थे। इस प्रकार दक्षिण पुरानी कलात्मक-परंपरा का केंद्र बन गया और उत्तर उन नयी धाराओं से अधिक प्रभावित हुआ, जो आक्रमणकारी अपने साथ लाते थे।

शांतिपूर्ण विकास और युद्ध के तरीके

बार-बार हमलों और एक के बाद दूसरे साम्राज्य की स्थापना का जो संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया गया, उसके बीच देश में शांतिपूर्ण और व्यवस्थित शासन के लंबे दौर रहे हैं।

मौर्य, कुषाण, गुप्त और दक्षिण में आंध्र, चालुक्य, राष्ट्रकूट के अलावा और भी राज्य ऐसे हैं जो दो-दो, तीन-तीन सौ वर्षों तक कायम रहे। इनमें लगभग सभी राजवंश देशी थे। कुषाणों जैसे लोगों ने भी जो उत्तरी सीमा पार से आए थे, जल्दी अपने आपको इस देश और इसकी सांस्कृतिक परंपरा के अनुरूप ढाल लिया।

जब कभी दो राज्यों के बीच युद्ध या कोई आंतरिक राजनीतिक आंदोलन होता था, तो आम जनता की जीवनचर्या में बहुत कम हस्तक्षेप किया जाता था।

इस इतिहास के व्यापक सर्वेक्षण से इस बात का संकेत मिलता है कि यहाँ शांतिपूर्ण और व्यवस्थित जीवन के लंबे दौर यूरोप की तुलना में कहीं अधिक हैं। यह धारणा भ्रामक है कि अंग्रेज़ी राज ने पहली बार भारत में शांति और व्यवस्था कायम की। अलबत्ता यह सही है कि जब भारत में अंग्रेज़ी शासन कायम हुआ, उस समय देश अवनति की पराकाष्ठा पर था।

© NCERT not to be republished

2018-19

राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था टूट चुकी थी। वास्तव में यही कारण था कि वह राज यहाँ कायम हो सका।

प्रगति बनाम सुरक्षा

भारत में जिस सभ्यता का निर्माण किया गया उसका मूल आधार स्थिरता और सुरक्षा की भावना थी। इस दृष्टि से वह उन तमाम सभ्यताओं से कहीं अधिक सफल रही जिनका उदय पश्चिम में हुआ था। वर्ण-व्यवस्था और संयुक्त परिवारों पर आधारित सामाजिक ढाँचे ने इस उद्देश्य को पूरा करने में सहायता की। यह व्यवस्था अच्छे-बुरे के भेद को मिटाकर सबको एक स्तर पर ले आती है और इस तरह व्यक्तिवाद की भूमिका इसमें बहुत कम रह जाती है। यह दिलचस्प बात है कि जहाँ भारतीय दर्शन अत्यधिक व्यक्तिवादी है और उसकी लगभग सारी चिंता व्यक्ति के विकास को लेकर है वहाँ भारत का सामाजिक ढाँचा सामुदायिक था और उसमें सामाजिक और सामुदायिक रीति-रिवाजों का कड़ाई से पालन करना पड़ता था।

इस सारी पाबंदी के बावजूद पूरे समुदाय को लेकर बहुत लचीलापन भी था। ऐसा कोई कानून या सामाजिक नियम नहीं था, जिसे रीति-रिवाज से बदला न जा सके। यह भी संभव था कि नए समुदाय अपने अलग-अलग रीति-रिवाजों, विश्वासों और जीवन-व्यवहार को बनाए रखकर बड़े सामाजिक संगठन के अंग बने रहें। इसी लचीलेपन ने विदेशी तत्वों को आत्मसात करने में सहायता की।

समन्वय केवल भारत में बाहर से आने वाले विभिन्न तत्वों के साथ नहीं किया गया, बल्कि व्यक्ति के बाहरी और भीतरी जीवन तथा मनुष्य और प्रकृति के बीच भी समन्वय करने का प्रयास दिखाई पड़ता है। इस सामान्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने भारत का निर्माण किया और इस पर विविधता के बावजूद एकता की मोहर लगाई। राजनीतिक ढाँचे के मूल में स्वशासी ग्राम व्यवस्था थी। राजा आते-जाते रहे पर यह व्यवस्था नींव की तरह कायम रही। बाहर से आने वाले नए लोग इस ढाँचे में सिर्फ़ सतही

2018-19

हलचल पैदा कर पाते थे। राज सत्ता चाहे देखने में कितनी निरंकुश लगती हो, रीति-रिवाजों और वैधानिक बंधनों से कुछ इस तरह नियंत्रित रहती थी कि कोई शासक ग्राम समुदाय के सामान्य और विशेषाधिकारों में आसानी से दखल नहीं दे सकता था। इन प्रचलित अधिकारों के तहत समुदाय और व्यक्तित्व दोनों की स्वतंत्रता एक हद तक सुरक्षित रहती थी।

ऐसा लगता है कि ऐसे हर तत्व ने जो बाहर से भारत में आया और जिसे भारत ने जज़्ब कर लिया, भारत को कुछ दिया और उससे बहुत कुछ लिया। जहाँ वह अलग-थलग रहा, वहाँ वह अंततः नष्ट हो गया और कभी-कभी इस प्रक्रिया में उसने खुद को या भारत को नुकसान पहुँचाया।

भारत का प्राचीन रंगमंच

भारतीय रंगमंच अपने मूल में, संबद्ध विचारों में और अपने विकास में पूरी तरह स्वतंत्र था। इसका मूल उद्‌गम *ऋग्वेद* की उन ऋचाओं और संवादों में खोजा जा सकता है जिनमें एक हद तक नाटकीयता है। *रामायण* और *महाभारत* में नाटकों का उल्लेख मिलता है। कृष्ण-लीला से संबंधित गीत, संगीत और नृत्य में इसने आकार ग्रहण करना आरंभ कर दिया था। ई. पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी के महान वैयाकरण पाणिनि ने कुछ नाट्य-रूपों का उल्लेख किया है।

रंगमंच की कला पर रचित *नाट्‌यशास्त्र* को ईसा की तीसरी शताब्दी की रचना कहा जाता है। ऐसे ग्रंथ की रचना तभी हो सकती थी, जब नाट्‌य कला पूरी तरह विकसित हो चुकी हो और नाटकों की सार्वजनिक प्रस्तुति आम बात हो।

अब यह माना जाने लगा है कि नियमित रूप से लिखे गए संस्कृत नाटक ई.पू. तीसरी शताब्दी तक पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुके थे। जो नाटक हमें मिले हैं उनमें पहले के ऐसे रचनाकारों और नाटकों का अक्सर हवाला दिया गया है जो अभी तक नहीं मिले हैं। ऐसे नाटककारों में एक भास था। इस शताब्दी के आरंभ में उसके तेरह नाटकों का एक संग्रह खोज में मिला

है। अब तक मिले संस्कृत नाटकों में प्राचीनतम नाटक अश्वघोष के हैं। वह ईसवी सन् के आरंभ के ठीक पहले या बाद में हुआ था। ये ताड़-पत्र पर लिखित पांडुलिपियों के अंश मात्र हैं और आश्चर्य की बात यह कि ये गोबी रेगिस्तान की सरहदों पर तुर्फ़ान में मिले हैं। अश्वघोष धर्मपरायण बौद्ध हुआ। उसने *बुद्धचरित* नाम से बुद्ध की जीवनी लिखी। यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुआ और बहुत समय पहले भारत, चीन और तिब्बत में बहुत लोकप्रिय हुआ।

यूरोप को प्राचीन भारतीय नाटक के बारे में पहली जानकारी 1789 ई. में तब हुई जब कालिदास के *शकुंतला* का सर विलियम जोंस कृत अनुवाद प्रकाशित हुआ। सर विलियम जोंस के अनुवाद के आधार पर जर्मन, फ्रेंच, डेनिश और इटालियन में भी इसके अनुवाद हुए। गेटे पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और उसने *शकुंतला* की अत्यधिक प्रशंसा की।

कालिदास को संस्कृत साहित्य का सबसे बड़ा कवि और नाटककार माना गया है। उसका समय अनिश्चित है, पर संभावना यही है कि वह चौथी शताब्दी के अंत में गुप्त वंश के चंद्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के शासन-काल में उज्जयिनी में था। माना जाता है कि वह दरबार के नौ रत्नों में से एक था। उसकी रचनाओं में जीवन के प्रति प्रेम और प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति आवेग का भाव मिलता है।

कालिदास की एक लंबी कविता है *मेघदूत*। एक प्रेमी, जिसे बंदी बनाकर उसकी प्रेयसी से अलग कर दिया गया है, वर्षा ऋतु में, एक बादल से अपनी तीव्र चाहत का संदेश उस तक पहुँचाने के लिए कहता है।

कालिदास से संभवत: काफी पहले एक बहुत प्रसिद्ध नाटक की रचना हुई थी—शूद्रक का *मृच्छकटिकम्* यानी मिट्टी की गाड़ी। यह एक कोमल और एक हद तक बनावटी नाटक है। लेकिन इसमें ऐसा सत्य है जो हमें प्रभावित करता है और हमारे सामने उस समय की मानसिकता और सभ्यता की झाँकी प्रस्तुत करता है।

2018-19

400 ई. के लगभग, चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में एक और प्रसिद्ध नाटक लिखा गया। यह विशाखदत्त का नाटक *मुद्राराक्षस* था। यह विशुद्ध राजनीतिक नाटक था, जिसमें प्रेम या किसी पौराणिक कथा को आधार नहीं बनाया गया है। कुछ अर्थों में यह नाटक वर्तमान स्थिति में बहुत प्रासंगिक है।

राजा हर्ष, जिसने सातवीं सदी ई. में एक नया साम्राज्य कायम किया, नाटककार भी था। हमें उसके लिखे हुए तीन नाटक मिलते हैं। सातवीं सदी के आसपास ही भवभूति हुआ, जो संस्कृत साहित्य का चमकता सितारा था। वह भारत में बहुत लोकप्रिय हुआ और केवल कालिदास का ही स्थान उसके ऊपर माना जाता है।

संस्कृत नाटकों की यह धारा सदियों तक बहती रही लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में गुणात्मक दृष्टि से स्पष्ट रूप से उसमें ह्रास दिखाई देने लगा।

प्राचीन नाटकों की (कालिदास तथा अन्य लोगों के) भाषा मिली-जुली है—संस्कृत और उसके साथ एक या एकाधिक प्राकृत, यानी संस्कृत के बोलचाल में प्रचलित रूप। उसी नाटक में शिक्षित पात्र संस्कृत बोलते हैं और सामान्य अशिक्षित जन समुदाय, प्रायः स्त्रियाँ प्राकृत, हालाँकि उनमें अनुवाद भी मिलते हैं। यह साहित्यिक भाषा और लोकप्रिय कला के बीच समझौता था। फिर भी प्राचीन नाटक अक्सर राज-दरबारों या उसी प्रकार के अभिजात दर्शकों के लिए अभिजात्यवादी कला को प्रस्तुत करते हैं।

इस ऊँचे दर्जे के साहित्यिक रंगमंच के अलावा हमेशा एक लोकमंच भी रहा है। इसका आधार भारतीय पुराकथाएँ और महाकाव्यों से ली गई कथाएँ होती थीं। दर्शकों को इन विषयों की अच्छी तरह जानकारी रहती थी और इनका सरोकार नाटकीय तत्व से कहीं अधिक प्रस्तुति पर रहता था। ये अलग-अलग क्षेत्रों की बोलियों में रचे जाते थे, अतः उस क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहते थे। दूसरी ओर संस्कृत-नाटकों का चलन पूरे भारत में था क्योंकि उनकी भाषा पूरे भारत के शिक्षित समुदाय की भाषा थी।

© NCERT not to be republished

संस्कृत भाषा की जीवंतता और स्थायित्व

संस्कृत अद्‌भुत रूप से समृद्ध भाषा है—अत्यंत विकसित और नाना प्रकार से अलंकृत। इसके बावजूद वह नियत और व्याकरण के उस ढाँचे में सख्ती से जकड़ी है जिसका निर्माण 2600 वर्ष पहले पाणिनि ने किया था। इसका प्रसार हुआ, संपन्न हुई, भरी-पूरी और अलंकृत हुई, पर इसने अपने मूल को नहीं छोड़ा। संस्कृत साहित्य के पतन के काल में भाषा ने अपनी कुछ शक्ति और शैली की सादगी खो दी।

सर विलियम जोंस ने 1784 में कहा था—"संस्कृत भाषा चाहे जितनी पुरानी हो, उसकी बनावट अद्‌भुत है, यूनानी भाषा के मुकाबले यह अधिक पूर्ण है, लातीनी के मुकाबले अधिक उत्कृष्ट है और दोनों के मुकाबले अधिक परिष्कृत है। पर दोनों के साथ वह इतनी अधिक मिलती-जुलती है कि यह संयोग आकस्मिक नहीं हो सकता। यह साफ़ पहचाना जा सकता है कि इन सभी भाषाओं का स्रोत एक ही है, जो शायद अब मौजूद नहीं रहा है।"

संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। उनका अधिकांश शब्दकोश और अभिव्यक्ति का ढंग संस्कृत की देन है। संस्कृत काव्य और दर्शन के बहुत से सार्थक और महत्त्वपूर्ण शब्द, जिनका विदेशी भाषाओं में अनुवाद नहीं किया जा सकता, आज भी हमारी लोक प्रचलित भाषाओं में जीवित हैं।

© NCERT not to be republished

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश और संस्कृति

रवींद्रनाथ ठाकुर ने लिखा था, "मेरे देश को जानने के लिए उस युग की यात्रा करनी होगी जब भारत ने अपनी आत्मा को पहचानकर अपनी भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण किया।"

हमें केवल बीते हुए समय में जाने की ही ज़रूरत नहीं है, बल्कि तन से नहीं तो मन से एशिया के विभिन्न देशों की यात्रा करने की ज़रूरत है जहाँ भारत ने अनेक रूपों में अपना विस्तार किया था।

पिछली चौथाई सदी के दौरान दक्षिण-पूर्वी एशिया के इस दूर तक फैले क्षेत्र के इतिहास पर बहुत प्रकाश डाला गया है। इसे कभी-कभी वृहत्तर भारत कहा गया है। लेकिन अब भी बहुत-सी कड़ियाँ नहीं मिलतीं। बहुत से अंतर्विरोध भी हैं। किंतु सामान्य रूप से सामग्री की कोई कमी नहीं है। भारतीय पुस्तकों के हवाले मिलते हैं, अरब यात्रियों के लिखे हुए वृत्तांत हैं और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है चीन से प्राप्त ऐतिहासिक विवरण। इसके अलावा बहुत से पुराने शिलालेख और ताम्र-पत्र हैं। जावा और बाली में भारतीय स्रोतों पर आधारित समृद्ध साहित्य है जिसमें अक्सर भारतीय महाकाव्यों और पुराकथाओं का भावानुवाद किया गया है। यूनानी और लातीनी स्रोतों से भी कुछ सूचनाएँ मिली हैं। लेकिन इन सबसे बढ़कर प्राचीन इमारतों के विशाल खंडहर हैं—विशेषकर अंगकोर और बोरोबुदुर में।

ईसा की पहली शताब्दी से लगभग 900 ईसवी तक उपनिवेशीकरण की चार प्रमुख लहरें दिखाई पड़ती हैं। इनके बीच-बीच में पूरब की ओर जाने वाले लोगों का सिलसिला अवश्य रहा होगा। इन साहसिक अभियानों की सबसे विशिष्ट बात यह थी कि इनका आयोजन स्पष्टत: राज्य द्वारा किया जाता था। दूर-दूर तक फैले इन उपनिवेशों की शुरुआत लगभग एक साथ होती थी और ये उपनिवेश युद्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों पर और महत्त्वपूर्ण मार्गों पर कायम किए जाते थे। इन बस्तियों का नामकरण पुराने भारतीय नामों के आधार पर किया गया । इस तरह जिसे अब कंबोडिया कहते हैं, उस समय कंबोज कहलाया।

जावा स्पष्ट रूप से 'यवद्वीप' या जौ का टापू है। यह आज भी एक अन्न विशेष का नाम है। प्राचीन पुस्तकों में आए हुए नामों का संबंध भी प्राय: खनिज, धातु या किसी उद्योग या खेती की पैदावार से होता है। इस नामकरण से खुद-ब-खुद ध्यान व्यापार की ओर जाता है।

यह व्यापार ईसा पूर्व तीसरी और दूसरी शताब्दियों में धीरे-धीरे बढ़ गया। इन साहसिक व्यवसायियों और व्यापारियों के बाद धर्म प्रचारकों का जाना शुरू हुआ होगा, क्योंकि यह समय अशोक के ठीक बाद का समय था।

2018-19

© NCERT not to be republished

संस्कृत की प्राचीन कथाओं से और यूनानी और अरबी दोनों में प्राप्त वृत्तांतों से पता लगता है कि भारत और सुदूर पूरब के देशों के बीच कम-से-कम ईसा की पहली शताब्दी में नियमित समुद्री व्यापार होता था।

यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में जहाज़ बनाने का उद्योग बहुत विकसित और उन्नति पर था। उस समय में बनाए गए जहाज़ों का कुछ ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। बहुत से भारतीय बंदरगाहों का उल्लेख मिलता है। दूसरी और तीसरी शताब्दी के दक्षिण भारतीय (आंध्र) सिक्कों पर दोहरे-पाल वाले जहाज़ों का चिह्न अंकित है। अजंता के भित्ति चित्रों में लंका-विजय और हाथियों को ले जाते हुए जहाज़ों के चित्र हैं।

महाद्वीप के देशों बर्मा, स्याम और हिंद-चीन पर चीन का प्रभाव अधिक था, टापुओं और मलय प्रायद्वीप पर भारत की छाप अधिक थी। आमतौर पर शासन-पद्धति और सामान्य जीवन-दर्शन चीन ने दिया और धर्म और कला भारत ने।

इन भारतीय उपनिवेशों का इतिहास तकरीबन तेरह सौ साल या इससे भी कुछ अधिक का है–ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी से आरंभ होकर पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक।

विदेशों पर भारतीय कला का प्रभाव

भारतीय सभ्यता ने विशेष रूप से दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में अपनी जड़ें जमाईं। इस बात का प्रमाण आज वहाँ सब जगह मिलता है, चंपा, अंगकोर, श्रीविजय, भज्जापहित और दूसरे स्थानों पर संस्कृत के बड़े-बड़े अध्ययन केंद्र थे। वहाँ जिन राज्यों का उदय हुआ उनके शासकों के नाम विशुद्ध भारतीय और संस्कृत नाम हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विशुद्ध भारतीय थे, पर इसका अर्थ यह अवश्य है कि उनका भारतीयकरण किया गया था। राजकीय समारोह भारतीय ढंग से संस्कृत में संपन्न किए जाते थे। राज्य के सभी कर्मचारियों के पास संस्कृत की प्राचीन पदवियाँ थीं और इनमें से कुछ पदवियाँ और पदनाम न केवल थाईलैंड में बल्कि मलाया की

© NCERT not to be republished

मुस्लिम रियासतों में भी अभी तक चले आ रहे हैं। इंडोनेशिया के इन स्थानों के प्राचीन साहित्य भारतीय पुराकथाओं और गाथाओं से भरे हुए हैं। जावा और बाली के मशहूर नृत्य भारत से लिए गए हैं। बाली के छोटे से टापू ने अपनी भारतीय संस्कृति को अभी तक बहुत सीमा तक कायम रखा है, यहाँ तक कि हिंदू धर्म भी वहाँ चला आ रहा है। फिलिपीन द्वीपों में लेखन-कला भारत से ही गई है।

कंबोडिया में वर्णमाला दक्षिण भारत से ली गई है और बहुत से संस्कृत शब्दों को थोड़े से हेर-फेर के साथ ले लिया गया है। दीवानी और फ़ौजदारी के कानून भारत के प्राचीन स्मृतिकार मनु के कानूनों के आधार पर बनाए गए हैं और इन्हें बौद्ध प्रभाव के कारण कुछ परिवर्तनों के साथ संहिताबद्ध करके कंबोडिया की आधुनिक कानून व्यवस्था में ले लिया गया है।

लेकिन भारतीय प्रभाव सबसे अधिक प्रकट रूप से प्राचीन भारतीय बस्तियों की भव्य कला और वास्तुकला में दिखाई पड़ता है। इस प्रभाव से अंगकोर और बोरोबुदुर की इमारतें और अद्‌भुत मंदिर तैयार हुए। जावा में बोरोबुदुर में बुद्ध की जीवन-कथा पत्थरों में उत्कीर्ण है। दूसरे स्थानों पर नक्काशी करके विष्णु, राम और कृष्ण की कथाएँ अंकित की गई हैं।

अंगकोरवट के विशाल मंदिर के चारों तरफ़ विशाल खंडहरों का विस्तृत क्षेत्र है। उसमें बनावटी झीलें, पोखरें और नहरें हैं जिनके ऊपर पुल बने हैं और एक बहुत बड़ा फाटक है जिस पर एक वृद्धाकार सिर पत्थर में खुदा है। यह एक आकर्षक मुस्कराता हुआ किंतु रहस्यमय कंबोडियाई देवतुल्य चेहरा है। इस चेहरे की मुस्कान अद्‌भुत रूप से मोहक और विचलित करने वाली है।

अंगकोर की प्रेरणा भारत से मिली पर उसका विकास ख्मेर प्रतिभा ने किया, या कि दोनों के परस्पर मेल से यह अजूबा पैदा हुआ। कंबोडिया के जिस राजा ने इसे बनवाया उसका नाम जयवर्मन (सप्तम) था, जो ठेठ भारतीय नाम है।

© NCERT not to be republished

2018-19

भारतीय कला का भारतीय धर्म और दर्शन से इतना गहरा रिश्ता है कि जब तक किसी को उन आदर्शों की जानकारी न हो जिनसे भारतीय मानस शासित होता है तब तक उसके लिए इसको पूरी तरह सराहना संभव नहीं है। भारतीय कला में हमेशा एक धार्मिक प्रेरणा होती है, एक पारदृष्टि होती है, कुछ वैसी ही जिसने संभवत: यूरोप के महान गिरजाघरों के निर्माताओं को प्रेरित किया था। सौंदर्य की कल्पना आत्मनिष्ठ रूप में की गई है, वस्तुनिष्ठ रूप में नहीं; वह आत्मा से संबंध रखने वाली चीज़ है, भले ही वह रूप या पदार्थ में भी आकर्षक आकार ग्रहण कर ले। यूनानियों ने सौंदर्य से निस्वार्थ भाव से प्रेम किया। उन्हें सौंदर्य में केवल आनंद ही नहीं मिलता था, वे उसमें सत्य के दर्शन भी करते थे। प्राचीन भारतीय भी सौंदर्य से प्रेम करते थे, पर वे हमेशा अपनी रचनाओं में कोई गहरा अर्थ भरने का प्रयत्न करते थे।

भारतीय कविता और संगीत की तरह कला में भी कलाकार से यह उम्मीद की जाती थी कि वह प्रकृति की सभी मनोदशाओं से तादात्म्य स्थापित करे ताकि वह प्रकृति और विश्व के साथ मनुष्य के मूलभूत सामंजस्य की अभिव्यक्ति कर सके। भारत की विशेषता उसकी मूर्तिकला और स्थापत्य में है, जिस तरह चीन और जापान की विशेषता उनकी चित्रकला में है।

भारतीय संगीत, जो यूरोपीय संगीत से बहुत भिन्न है, अपने ढंग से बहुत विकसित था। इस दृष्टि से भारत का बहुत विशिष्ट स्थान है और संगीत के क्षेत्र में चीन और सुदूर पूर्व के अलावा उसने एशियाई संगीत को बहुत दूर तक प्रभावित किया था।

एशिया के दूसरे देशों की तरह भारत में भी कला के विकास पर, गढ़ी हुई मूर्तियों के विरुद्ध धार्मिक पूर्वाग्रह का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। वेद मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे और बौद्ध धर्म में भी अपेक्षाकृत बाद के समय में ही बुद्ध की मूर्तियाँ और चित्र बनाए जा सके। मथुरा के संग्रहालय में बोधिसत्व की एक विशाल शक्तिशाली और प्रभावशाली पाषाण प्रतिमा है। इसका निर्माण ईसवी सन् के आरंभ के आस-पास कुषाण युग में हुआ था।

2018-19
© NCERT not to be republished

भारतीय कला अपने आरंभिक काल में प्रकृतिवाद से भरी है, जो कुछ अंशों में चीनी प्रभाव के कारण हो सकता है। भारतीय कला के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं पर चीनी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

चौथी से छठी शताब्दी ईसवी में गुप्तकाल के दौरान, जिसे भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है, अजंता की गुफ़ाएँ खोदी गईं और उनमें भित्ति चित्र बनाए गए। बाग और बादामी की गुफ़ाएँ भी इसी काल की हैं।

अजंता हमें किसी स्वप्न की तरह दूर किंतु असल में एकदम वास्तविक दुनिया में ले जाती है। इन भित्ति चित्रों को बौद्ध भिक्षुओं ने बनाया था। बहुत समय पहले उनके स्वामी ने कहा था–स्त्रियों से दूर रहो, उनकी तरफ़ देखो भी नहीं, क्योंकि वे खतरनाक हैं। इसके बावजूद इन चित्रों में स्त्रियों की कमी नहीं है–सुंदर स्त्रियाँ, राजकुमारियाँ, गायिकाएँ, नर्तकियाँ, बैठी और खड़ी, शृंगार करती हुईं या शोभा यात्रा में जाती हुईं। ये चित्रकार भिक्षु संसार को और जीवन के गतिशील नाटक को कितनी अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने ये चित्र उतने ही प्रेम से बनाए हैं जितने प्रेम से उन्होंने बोधिसत्व को उनकी शांत, लोकोत्तर गरिमा में चित्रित किया है।

अंजता का एक चित्र

सातवीं-आठवीं शताब्दियों में ठोस चट्टान को काटकर एलोरा की विशाल गुफ़ाएँ तैयार हुईं, जिनके बीच में कैलाश का विशाल मंदिर है। यह अनुमान करना कठिन है कि इंसान ने इसकी कल्पना कैसे की होगी या कल्पना करने के बाद अपनी कल्पना को रूपाकार कैसे दिया होगा। एलीफ़ेंटा की गुफ़ाएँ भी इसी समय की हैं जहाँ प्रभावशाली और रहस्यमयी त्रिमूर्ति बनी है। दक्षिण भारत में महाबलीपुरम् की इमारतों का निर्माण भी इसी समय हुआ था।

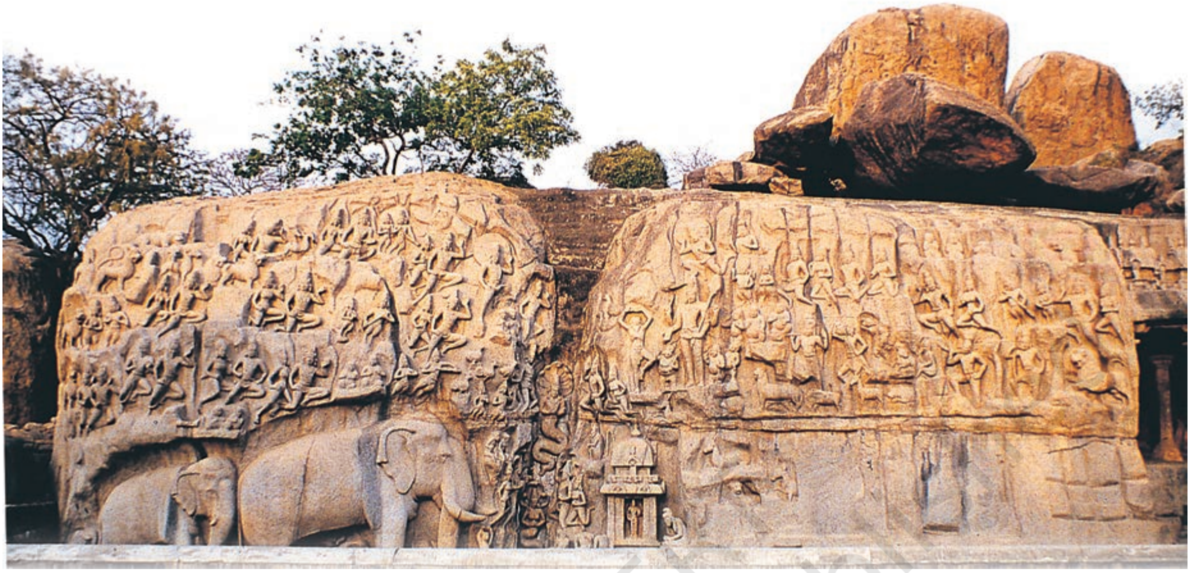

महाबलीपुरम् की एक इमारत

एलिफ़ेंटा की गुफ़ाओं में नटराज शिव की एक खंडित मूर्ति है, जिसमें शिव नृत्य की मुद्रा में हैं। हैवेल का कहना है कि इस क्षत-विक्षत अवस्था में भी यह मूर्ति भीमाकार शक्ति का मूर्त रूप है और इसकी कल्पना अत्यंत विशाल है।

ब्रिटिश संग्रहालय में विश्व का सृजन और नाश करते हुए नटराज शिव की एक और मूर्ति है। एप्सटीन ने लिखा है कि उनकी विशाल लयात्मकता काल के विराट युगों का आह्वान करती है।

जावा में बोरीबुदुर से बोधिसत्व का एक सिर कोपेनहेगन के ग्लिपटोटेक ले जाया गया है। रूपगत सौंदर्य की दृष्टि से तो यह सिर सुंदर है ही, इसमें कुछ और गहरी बात है जो बोधिसत्व की शुद्ध आत्मा को इस तरह उद्‌घाटित करती है जैसे दर्पण में प्रतिबिंब। वह एक ऐसा चेहरा है, जिसमें समुद्र की गहराइयों की प्रशांति, निरभ्र नीले आकाश की स्वच्छता और इंसानी पहुँच से परे का परम सौंदर्य मूर्तिमान हुआ है।

2018-19

भारत का विदेशी व्यापार

ईसवी सन् के पहले एक हज़ार वर्षों के दौरान, भारत का व्यापार दूर-दूर तक फैला हुआ था और बहुत से विदेशी बाज़ारों पर भारतीय व्यापारियों का नियंत्रण था। पूर्वी समुद्र के देशों में तो उनका प्रभुत्व था ही, उधर वह भूमध्य सागर तक भी फैला हुआ था।

भारत में बहुत प्राचीन काल से कपड़े का उद्योग बहुत विकसित हो चुका था। भारतीय कपड़ा दूर-दूर के देशों में जाता था। रेशमी कपड़ा भी यहाँ काफ़ी समय से बनता रहा है। लेकिन वह शायद उतना अच्छा नहीं होता था जितना चीनी रेशम, जिसका आयात यहाँ ई.पू. चौथी शताब्दी से ही किया जाता था। भारतीय रेशम उद्योग ने बाद में विकास किया, लेकिन बहुत नहीं। कपड़े को रँगने की कला में उल्लेखनीय प्रगति हुई और पक्के रंग तैयार करने के खास तरीके खोज निकाले गए। इनमें से एक नील का रंग था, जिसे अंग्रेज़ी में 'इंडिगो' कहते हैं। यह शब्द इंडिया से बना है और अंग्रेज़ी में यूनान के माध्यम से आया है।

महरौली (दिल्ली) में कुतुबमीनार के परिसर में खड़ा लौह-स्तंभ, जिसका निर्माण लगभग 1500 साल पहले हुआ

ईसवी सन् की आरंभिक शताब्दियों में भारत में रसायनशास्त्र का विकास और देशों की तुलना में शायद अधिक हुआ था। भारतीय, प्राचीन काल से ही फ़ौलाद को ताव देना जानते थे। भारतीय फ़ौलाद और लोहे की दूसरे देशों में बहुत कद्र की जाती थी, विशेष रूप से युद्ध के

कामों में। भारतीयों को और बहुत सी धातुओं की भी जानकारी थी और उनका इस्तेमाल किया जाता था। औषधियों के लिए धातुओं के मिश्रण तैयार किए जाते थे। आसव और भस्म बनाना ये लोग खूब जानते थे। औषध-विज्ञान काफ़ी विकसित था। मध्य-युग तक प्रयोगों में काफ़ी विकास किया जा चुका था, गरचे ये प्रयोग मुख्य रूप से प्राचीन ग्रंथों पर आधारित थे। शरीर-रचना और शरीर-विज्ञान का अध्ययन किया जाता था और हार्वे से बहुत पहले रक्त-संचार की बात सुझाई जा चुकी थी।

खगोलशास्त्र, जो विज्ञानों में प्राचीनतम है, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का नियमित विषय था और फलित ज्योतिष को इससे मिला दिया जाता था। एक निश्चित पंचांग भी तैयार किया गया था जो अब भी प्रचलित है। जो लोग समुद्री-यात्रा पर निकलते थे, उनके लिए खगोलशास्त्र का ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से बहुत सहायक होता था।

यह कहना कठिन है कि उस समय तक यंत्रों ने कितनी प्रगति की थी, लेकिन जहाज़ बनाने का उद्योग खूब चलता था। इसके अलावा, विशेष रूप से युद्ध में काम आने वाली तरह-तरह की मशीनों के हवाले भी मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भारत औज़ारों के निर्माण एवं प्रयोग में और रसायनशास्त्र एवं धातुशास्त्र संबंधी जानकारी में किसी देश से पीछे नहीं था। इसी कारण कई सदियों तक वह कई विदेशी मंडियों को अपने वश में रख सका।

प्राचीन भारत में गणितशास्त्र

यह माना जाता है कि आधुनिक अंकगणित और बीजगणित की नींव भारत में ही पड़ी थी। गिनती के चौखटे को इस्तेमाल करने की फूहड़ पद्धति, रोमन और उसी तरह की संख्याओं के इस्तेमाल ने बहुत समय तक प्रगति में बाधा दी, जबकि शून्यांक मिलाकर दस भारतीय संख्याओं ने मनुष्य की बुद्धि को इन बाधाओं से बहुत पहले मुक्त कर दिया था और अंकों के व्यवहार पर अत्यधिक प्रकाश डाला था। ये अंक चिह्न बेजोड़ थे और दूसरे देशों में प्रयोग किए जाने वाले तमाम चिह्नों से एकदम भिन्न थे।

© NCERT not to be republished

भारत में ज्यामिति, अंकगणित और बीजगणित का आरंभ बहुत प्राचीन काल में हुआ था। शायद आरंभ में वैदिक वेदियों पर आकृतियाँ बनाने के लिए एक तरह के ज्यामितीय बीजगणित का प्रयोग किया जाता था। हिंदू संस्कारों में ज्यामितिक आकृतियाँ अब भी आमतौर पर काम में लाई जाती हैं। भारत में ज्यामिति का विकास अवश्य हुआ पर इस क्षेत्र में यूनान और सिकंदरिया आगे बढ़ गए। अंकगणित और बीजगणित में भारत आगे बना रहा। जिसे 'शून्य' या 'कुछ नहीं' कहा जाता है वह आरंभ में एक बिंदी या नुक्ते की तरह था। बाद में उसने एक छोटे वृत्त का रूप धारण कर लिया। उसे किसी भी और अंक की तरह एक अंक समझा जाता था।

शून्यांक और स्थान-मूल्य वाली दशमलव विधि को स्वीकार करने के बाद अंकगणित और बीजगणित में तेज़ी से विकास करने की दिशा में कपाट खुल गए। बीजगणित पर सबसे प्राचीन ग्रंथ ज्योतिर्विद आर्यभट्ट का है, जिनका जन्म 427 ई. में हुआ था। भारतीय गणितशास्त्र में अगला महत्त्वपूर्ण नाम भास्कर (522 ई.) का और उसके बाद ब्रह्मपुत्र (628 ई.) का है। ब्रह्मपुत्र प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भी था जिसने शून्य पर लागू होने वाले नियम निश्चित किए और इस क्षेत्र में और अधिक उल्लेखनीय प्रगति की। इसके बाद अंकगणित और बीजगणित पर लिखने वाले गणितज्ञों की परंपरा मिलती है। इनमें अंतिम महान नाम भास्कर द्वितीय का है, जिसका जन्म 1114 ई. में हुआ था। उसने खगोलशास्त्र, बीजगणित और अंकगणित पर क्रमशः तीन ग्रंथों की रचना की। अंकगणित पर उनकी पुस्तक का नाम *लीलावती* है, जो स्त्री का नाम होने के कारण गणित की पुस्तक के लिए विचित्र लगता है। विश्वास किया जाता है कि लीलावती भास्कर की पुत्री थी गोकि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पुस्तक की शैली सरल और स्पष्ट है और छोटी उम्र के लोगों की समझ के लिए उपयुक्त है। इस पुस्तक का संस्कृत विद्यालयों में अब भी कुछ हद तक अपनी शैली के कारण इस्तेमाल किया जाता है।

2018-19

© NCERT not to be republished

आठवीं शताब्दी में खलीफ़ा अल्मंसूर के राज्यकाल में (753–774 ई.) कई भारतीय विद्वान बगदाद गए और अपने साथ वे जिन पुस्तकों को ले गए उनमें खगोलशास्त्र और गणित की पुस्तकें थीं। इन्होंने अरबी जगत में गणितशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र के विकास को प्रभावित किया और वहाँ भारतीय अंक प्रचलित हुए। बगदाद उस समय विद्याध्ययन का बड़ा केंद्र था और यूनानी और यहूदी विद्वान वहाँ एकत्र होकर अपने साथ यूनानी दर्शन, ज्यामिति और विज्ञान ले गए थे। मध्य एशिया से स्पेन तक सारी इस्लामी दुनिया पर बगदाद का सांस्कृतिक प्रभाव महसूस किया जा रहा था और अरबी अनुवादों के माध्यम से भारतीय गणित का ज्ञान इस व्यापक क्षेत्र में फैल गया था।

अरबी जगत से यह नया गणित, संभवत: स्पेन के मूर विश्वविद्यालयों के माध्यम से यूरोपीय देशों में पहुँचा और इससे यूरोपीय गणित की नींव पड़ी। यूरोप में इन नए अंकों का विरोध हुआ और इनके आमतौर पर प्रचलन में कई सौ वर्ष लग गए। इनका सबसे पहला प्रयोग, जिसकी जानकारी मिलती है, 1134 ई. में सिसली के एक सिक्के में हुआ। ब्रिटेन में इसका पहला प्रयोग 1490 ई. में हुआ।

विकास और ह्रास

ईसवी सन् के पहले हज़ार वर्षों में, भारत में आक्रमणकारी तत्वों और आंतरिक झगड़ों के कारण बहुत उतार-चढ़ाव आए। फिर भी यह समय ऊर्जा से उफनता और सभी दिशाओं में अपना प्रसार करते हुए कर्मठ राष्ट्रीय जीवन का समय रहा है। ईरान, चीन, यूनानी जगत, मध्य एशिया से उसका संपर्क बढ़ता है और इस सबसे बढ़कर पूर्वी समुद्रों की ओर बढ़ने की शक्तिशाली प्रेरणा पैदा होती है। परिणामस्वरूप भारतीय उपनिवेशों की स्थापना और भारतीय सीमाओं को पार कर दूर-दूर तक भारतीय संस्कृति का प्रसार होता है। इन हज़ार वर्षों के बीच के समय में यानी चौथी शताब्दी के आरंभ से लेकर छठी शताब्दी तक गुप्त साम्राज्य समृद्ध होता है। यह भारत

© NCERT not to be republished
2018-19

का स्वर्ण युग कहलाता है। इस युग के संस्कृत साहित्य में एक प्रकार की प्रशांति, आत्मविश्वास और आत्माभिमान की दीप्ति और उमंग दिखाई पड़ती है।

स्वर्ण-युग के समाप्त होने से पहले ही कमज़ोरी और ह्रास के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। उत्तर-पश्चिम से गोरे हूणों के दल के दल आते हैं और बार-बार वापस खदेड़ दिए जाते हैं। किंतु धीरे-धीरे वे उत्तर-भारत में अपनी राह बना लेते हैं और आधी शताब्दी तक पूरे उत्तर में अपने को राज-सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित कर लेते हैं। इसके बाद, अंतिम गुप्त सम्राट मध्य-भारत के एक शासक यशोवर्मन के साथ मिलकर, बहुत प्रयत्न करके हूणों को निकाल बाहर करता है।

इस लंबे संघर्ष ने भारत को राजनीतिक और सैनिक दोनों दृष्टियों से दुर्बल बना दिया। हूणों के उत्तर भारत में बस जाने के कारण लोगों में धीरे-धीरे एक अंदरूनी परिवर्तन घटित हुआ। हूणों के पुराने वृत्तांत कठोरता और बर्बर व्यवहार से भरे पड़े हैं। ऐसा व्यवहार जो युद्ध और शासन के भारतीय आदर्शों से एकदम भिन्न हैं।

सातवीं शताब्दी में हर्ष के शासनकाल में उज्जयिनी (आधुनिक उज्जैन), जो गुप्त शासकों की शानदार राजधानी थी, फिर से कला, संस्कृति और एक शक्तिशाली साम्राज्य का केंद्र बनती है। लेकिन आने वाली सदियों में वह भी कमज़ोर पड़कर धीरे-धीरे खत्म हो जाती है। नौवीं शताब्दी में गुजरात का मिहिर भोज उत्तर और मध्य भारत में छोटे राज्यों को मिलाकर एक संयुक्त राज्य कायम करके कन्नौज को अपनी राजधानी बनाता है। एक बार फिर साहित्यिक पुनर्जागरण होता है जिसके प्रमुख व्यक्तित्व राजशेखर हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में एक बार फिर, एक दूसरा भोज सामने आता है जो बहुत पराक्रमी और आकर्षक है और उज्जयिनी फिर एक बड़ी राजधानी बनती है। यह भोज बड़ा अद्‌भुत व्यक्ति था जिसने अनेक क्षेत्रों में प्रतिष्ठा हासिल की। वह वैयाकरण और कोशकार था। साथ ही उसकी दिलचस्पी भेषज और खगोलशास्त्र में थी। उसने इमारतों का निर्माण कराया और कला एवं साहित्य

© NCERT not to be republished

का संरक्षण किया। वह स्वयं कवि और लेखक था जिसके नाम से कई रचनाएँ मिलती हैं। उसका नाम महानता, विद्वत्ता और उदारता के प्रतीक के रूप में लोक-कथाओं और किस्सों का हिस्सा बन गया है।

इन तमाम चमकदार टुकड़ों के बावजूद एक भीतरी कमज़ोरी ने भारत को जकड़ रखा है, जिससे उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा ही नहीं, बल्कि उसके रचनात्मक क्रियाकलाप भी प्रभावित होते दिखाई पड़ते हैं। यह प्रक्रिया बहुत धीमी गति से चलती रही और इसने दक्षिण भारत की तुलना में उत्तर भारत को जल्द प्रभावित किया। वस्तुतः दक्षिण, आक्रमणकारियों के लगातार हमलों का मुकाबला करने के दबाव से बचा रहा। उत्तर भारत की अनिश्चित स्थिति से बचाव के लिए बहुत से लेखक, कलाकार और वास्तुशिल्पी दक्षिण में जाकर बस गए। दक्षिण के शक्तिशाली राज्यों ने इन लोगों को रचनात्मक कार्य के लिए ऐसा अवसर दिया होगा जो उन्हें दूसरी जगह नहीं मिला।

गरचे उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, पर जीवन वहाँ समृद्ध था और वहाँ कई केंद्र सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टि से सक्रिय थे। हमेशा की तरह बनारस धार्मिक और दार्शनिक विचारों का गढ़ था। लंबे समय तक कश्मीर भी बौद्धों और ब्राह्मणों के संस्कृत-ज्ञान का बहुत बड़ा केंद्र रहा। भारत में बड़े-बड़े विश्वविद्यालय रहे। इनमें सबसे प्रसिद्ध नालंदा था, जिसके विद्वानों का पूरे भारत में आदर किया जाता था। यहाँ चीन, जापान और तिब्बत से विद्यार्थी आते थे, बल्कि कोरिया, मंगोलिया और बुखारा से भी। धार्मिक और दार्शनिक विषयों (बौद्ध और ब्राह्मण दोनों के अनुसार) के अलावा दूसरे विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। कला और वास्तुशिल्प के विभाग थे, वैद्यक का विद्यालय था, कृषि विभाग था, डेरी फार्म था और पशु थे। विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार ज़्यादातर नालंदा के विद्वानों ने किया है।

इसके अलावा बिहार में आजकल के भागलपुर के पास विक्रमशिला और काठियावाड़ में वल्लभी विश्वविद्यालय थे। गुप्त शासकों के समय

© NCERT not to be republished

में उज्जयिनी विश्वविद्यालय का उत्कर्ष हुआ। दक्षिण में अमरावती विश्वविद्यालय था।

ज्यों-ज्यों सहस्राब्दी समाप्ति पर आती है यह सब सभ्यता के तीसरे पहर जैसा लगने लगता है। दक्षिण में अब भी तेजस्विता और शक्ति शेष थी और वह कुछ और शताब्दियों तक बनी रही। पर ऐसा लगता था जैसे हृदय स्तंभित हो चला हो, उनकी धड़कनें मंद होने लगी हों। आठवीं शताब्दी में शंकर के बाद कोई महान दार्शनिक नहीं हुआ। शंकर भी दक्षिण भारतीय थे। ब्राह्मण और बौद्ध दोनों धर्मों का ह्रास होने लगता है और पूजा के विकृत रूप सामने आने लगते हैं, विशेषकर तांत्रिक पूजा और योग-पद्धति के भ्रष्ट रूप।

साहित्य में भवभूति (आठवीं शताब्दी) आखिरी बड़ा व्यक्ति था। गणित में आखिरी बड़ा नाम भास्कर द्वितीय (बारहवीं शताब्दी) का है। कला में ई. वी. हैवेल के अनुसार सातवीं या आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक भारतीय कला का महान युग था। यही समय यूरोप में गाथिक कला के चरम विकास का समय था। प्राचीन भारतीय कला की रचनात्मक प्रवृत्ति का ह्रास स्पष्ट रूप से सोलहवीं शताब्दी में होने लगा। मेरा खयाल है कला के क्षेत्र में भी उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में ही पुरानी परंपरा ज़्यादा लंबे समय तक कायम रही।

उपनिवेशों में बसने के लिए आखिरी बड़ा दल दक्षिण से नवीं शताब्दी में गया था, लेकिन दक्षिण के चोलवंशी ग्यारहवीं शताब्दी में तब तक एक बड़ी समुद्री शक्ति बने रहे जब तक उन्हें श्रीविजय ने परास्त करके उन पर विजय नहीं प्राप्त कर ली।

समय के साथ भारत क्रमशः अपनी प्रतिभा और जीवन-शक्ति को खोता जा रहा था। यह प्रक्रिया बहुत धीमी थी और कई सदियों तक चलती रही। इसका आरंभ उत्तर में हुआ और अंत में यह दक्षिण पहुँच गई। इस राजनीतिक पतन और सांस्कृतिक गतिरोध के कारण क्या थे? राधाकृष्णन का कहना है कि भारतीय दर्शन ने अपनी शक्ति राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ खो दी।

यह सही है कि राजनीतिक स्वतंत्रता खो जाने से सांस्कृतिक ह्रास अनिवार्य रूप से शुरू हो जाता है। लेकिन राजनीतिक स्वतंत्रता तभी छिनती

© NCERT not to be republished

है जब उससे पहले किसी तरह का ह्रास शुरू हो जाता है। भारत जैसा विशाल, अति विकसित और अत्यंत सभ्य देश बाह्य आक्रमण के सामने तभी हार मानेगा जब या तो भीतर से खुद पतनशील हो या आक्रमणकारी युद्धकौशल में उससे आगे हो। भीतरी ह्रास भारत में इन हज़ार वर्षों के अंत में बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

हर सभ्यता के जीवन में ह्रास और विघटन के दौर बार-बार आते हैं पर भारत ने उनसे बचकर नए सिरे से अपना कायाकल्प कर लिया। उसमें एक ऐसा सक्रिय अंतस्तल रहा जो नए संपर्कों से अपने को हमेशा ताज़ा रूप देकर फिर से अपना विकास करता रहा—कुछ इस रूप में कि अतीत से भिन्न होकर भी उसके साथ गहरा संबंध बना रहा। भारत में हमेशा से व्यवहार में रूढ़िवादिता और विचारों में विस्फोट का विचित्र संयोग रहा है।

सभ्यताओं के ध्वस्त होने के हमारे सामने बहुत से उदाहरण हैं। इनमें सबसे उल्लेखनीय उदाहरण यूरोप की प्राचीन सभ्यता का है जिसका अंत रोम के पतन के साथ हुआ।

भारतीय सभ्यता का ऐसा नाटकीय अंत न उस समय हुआ और न बाद में, किंतु उत्तरोत्तर पतन साफ़ दिखाई पड़ता है। शायद यह भारतीय समाज-व्यवस्था के बढ़ते हुए कट्टरपन और गैरमिलनसारी का अनिवार्य परिणाम था जिसे यहाँ की जाति-व्यवस्था में देखा जा सकता है। जहाँ भारतीय विदेश चले गए, जैसे दक्षिण पूर्वी एशिया में, वहाँ उनकी मानसिकता, रीति-रिवाज और अर्थव्यवस्था किसी में इतना कट्टरपन दिखाई नहीं पड़ता। अगले चार-पाँच सौ वर्ष तक वे इन उपनिवेशों में फले-फूले और उन्होंने तेजस्विता और रचनात्मक शक्ति का परिचय दिया। स्वयं भारत में गैरमिलनसारी की भावना ने उनकी रचनात्मकता को नष्ट कर दिया। जीवन निश्चित चौखटों में बँट गया, जहाँ हर आदमी का धंधा स्थायी और नियत हो गया। देश की सुरक्षा के लिए युद्ध करना क्षत्रियों का काम हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय वाणिज्य-व्यापार को नीची नज़र से देखते थे। नीची जाति वालों को शिक्षा और विकास के अवसरों से वंचित रखा गया और उन्हें अपने से ऊँची जाति के लोगों के अधीन रहना सिखाया गया।

2018-19

भारत के सामाजिक ढाँचे ने भारतीय सभ्यता को अद्‌भुत दृढ़ता दी थी। उसने गुटों को शक्ति दी और उन्हें एकजुट किया, लेकिन यह बात बृहत्तर एकता और विकास के लिए बाधक हुई। इसने दस्तकारी, शिल्प, वाणिज्य और व्यापार का विकास किया, लेकिन हमेशा अलग-अलग समुदायों के भीतर। इस तरह खास ढंग के धंधे पुश्तैनी बन गए और नए ढंग के कामों से बचने और पुरानी लकीर पीटते रहने की प्रवृत्ति पैदा हुई। इससे बड़ी संख्या में लोगों को विकास के अवसरों से वंचित करते हुए, उन्हें स्थायी रूप से समाज की सीढ़ी में नीचा दर्जा देकर यह मूल्य चुकाया गया।

इसी कारण हर तरफ़ ह्रास हुआ – विचारों में, दर्शन में, राजनीति में, युद्ध की पद्धति में, बाहरी दुनिया के बारे में जानकारी और उसके साथ संपर्क में। साथ ही क्षेत्रीयता के भाव बढ़ने लगे, भारत की अखंडता की अवधारणा के स्थान पर सामंतवाद और गिरोहबंदी की भावनाएँ बढ़ने लगीं और अर्थव्यवस्था संकुचित हो गई। इसके बावजूद जीवनी शक्ति और अद्‌भुत दृढ़ता बची हुई थी और इसके साथ लचीलापन एवं अपने को ढालने की क्षमता। इसीलिए वह बचा रह सका, नए संपर्कों एवं विचारधाराओं का लाभ उठा सका और कुछ दिशाओं में प्रगति भी कर सका, लेकिन यह प्रगति अतीत के बहुत से अवशेषों से जकड़ी रही और बाधित होती रही।

© NCERT not to be republished

नयी समस्याएँ

अरब और मंगोल

जब हर्ष उत्तर-भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्य के शासक थे और विद्वान चीनी यात्री हुआन त्सांग नालंदा में अध्ययन कर रहे थे, उसी समय अरब में इस्लाम अपना रूप ग्रहण कर रहा था। भारत के मध्य भाग तक पहुँचने में इसे लगभग 600 वर्ष लग गए और जब उसने राजनीतिक विजय के साथ भारत में प्रवेश किया, तब वह बहुत बदल चुका था और उसके नेता दूसरे लोग थे। अरब वाले भारत के उत्तर-पश्चिमी छोर तक पहुँचकर वहीं रुक गए। अरब सभ्यता का क्रमश: पतन हुआ और मध्य तथा पश्चिमी एशिया में तुर्की जातियाँ आगे आईं। भारत के सीमावर्ती प्रदेश से यही तुर्क और अफ़गान इस्लाम को राजनीतिक शक्ति के रूप में भारत लाए।

अरबों ने बड़ी आसानी से दूर-दूर तक फैलकर तमाम इलाके फ़तह किए। पर भारत में वे तब भी और बाद में भी सिंध से आगे नहीं बढ़े। शायद भारत तब भी आक्रमणकारियों को रोकने के लिए काफ़ी मज़बूत था। किसी हद तक इसका कारण अरबों के आंतरिक झगड़े भी हो सकते हैं। सिंध बगदाद की केंद्रीय सत्ता से अलग होकर एक छोटा-सा स्वतंत्र राज्य हो गया। हालाँकि आक्रमण नहीं हुआ, पर भारत और अरब के बीच संपर्क बढ़ने लगा। दोनों ओर से यात्रियों का आना-जाना हुआ, राजदूतावासों की अदला-बदली हुई। भारतीय पुस्तकें, विशेषकर गणित और खगोलशास्त्र पर, बगदाद पहुँचीं और वहाँ अरबी में उनके अनुवाद हुए। बहुत से भारतीय चिकित्सक बगदाद गए। यह व्यापार और सांस्कृतिक संबंध उत्तर-भारत तक सीमित नहीं थे। भारत के दक्षिणी राज्यों ने भी उसमें हिस्सा लिया, विशेषकर राष्ट्रकूटों ने जो भारत के पश्चिमी तट से व्यापार किया करते थे।

© NCERT not to be republished

इस लगातार संपर्क के कारण भारतीयों को अनिवार्य रूप से इस नए धर्म इस्लाम की जानकारी हो गई। इस नए धर्म को फैलाने के लिए प्रचारक भी आए और उनका स्वागत हुआ। मसजिदें बनीं। न शासन ने इसका विरोध किया न जनता ने। न कोई धार्मिक झगड़े हुए। सब धर्मों का आदर और पूजा के सभी तरीकों के प्रति सहनशीलता का व्यवहार करना भारत की प्राचीन परंपरा थी। अतः राजनीतिक ताकत के रूप में आने से कई शताब्दी पहले इस्लाम भारत में एक धर्म के रूप में आ गया था।

महमूद गज़नवी और अफ़गान

लगभग तीन सौ वर्ष तक भारत पर कोई और आक्रमण नहीं हुआ। 1000 ई. के आसपास अफ़गानिस्तान के सुलतान महमूद गज़नवी ने भारत पर आक्रमण करने आरंभ किए। महमूद गज़नवी तुर्क था जिसने मध्य एशिया में अपनी ताकत बढ़ा ली थी। उसने बड़ी निर्ममता से कई आक्रमण किए जिनमें बहुत खून-खराबा हुआ। हर बार महमूद अपने साथ बहुत बड़ा खज़ाना ले गया। हिंदू धूलकणों की तरह चारों तरफ़ बिखर गए और उनकी याद भर लोगों के मुँह में पुराने किस्से की तरह बाकी रह गई। जो तितर-बितर होकर बचे रहे उनके मन में सभी मुसलमानों के प्रति गहरी नफ़रत पैदा हो गई।

अनुमान लगाया जा सकता है कि महमूद ने कितनी तबाही की थी। पर महमूद ने उत्तरी भारत के सिर्फ़ एक टुकड़े को छुआ और लूटा था जो उसके धावे के रास्ते में पड़ा था। पूरा मध्य पूर्वी और दक्षिणी भारत उससे पूरी तरह बच गया था।

महमूद ने पंजाब और सिंधु को अपने राज्य में मिला लिया। वह हर धावे के बाद गज़नी लौट जाता था। वह कश्मीर पर विजय नहीं पा सका। यह पहाड़ी देश उसे रोकने और मार भगाने में सफल हो गया। काठियावाड़ में सोमनाथ से लौटते हुए राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में भी उसे भारी हार खानी पड़ी। इस आखिरी धावे के बाद वह फिर नहीं लौटा।

© NCERT not to be republished

महमूद की मृत्यु 1030 ई. में हुई। उसकी मृत्यु के बाद 160 वर्षों से अधिक समय तक न तो भारत पर कोई आक्रमण हुआ और न ही पंजाब के आगे तुर्की शासन का विस्तार हुआ। इसके बाद शाहबुद्दीन गौरी नाम के एक अफ़गान ने गज़नी पर कब्ज़ा कर लिया और गज़नवी साम्राज्य का अंत हो गया। उसने पहले लाहौर पर धावा किया और फिर दिल्ली पर। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान ने उसे पूरी तरह पराजित कर दिया। शाहबुद्दीन अफ़गानिस्तान लौट गया और अगले साल एक और फ़ौज लेकर लौटा। इस बार उसकी जीत हुई और 1192 ई. में वह दिल्ली के तख्त पर बैठा।

दिल्ली फ़तह करने का मतलब यह नहीं था कि बाकी भारत भी फ़तह हो गया। दक्षिण में चोल शासक अभी तक बहुत शक्तिशाली थे और उनके अलावा दूसरे स्वतंत्र राज्य भी थे। अफ़गानों को दक्षिण भारत के बड़े हिस्से तक अपने शासन का विस्तार करने में डेढ़ शताब्दी और लगी। लेकिन इस नयी व्यवस्था में दिल्ली का स्थान महत्त्वपूर्ण भी था और प्रतीकात्मक भी। भारत पर महमूद गज़नवी के आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि कुछ समय के लिए पंजाब बाकी भारत से अलग हो गया। बारहवीं शताब्दी के अंत में आने वाले अफ़गानों की बात कुछ और थी। वे हिंद-आर्य जाति के लोग थे और भारत की जनता से उनका निकट का संबंध था। लंबे समय तक अफ़गानिस्तान भारत का हिस्सा होकर रहा है और ऐसा होना उसकी नियति थी।

चौदहवीं शताब्दी के अंत में तुर्क-मंगोल तैमूर ने उत्तर की ओर से आकर दिल्ली की सल्तनत को ध्वस्त कर दिया। वह कुछ ही महीने भारत में रहा। वह दिल्ली आया और लौट गया, पर जिस रास्ते से वह आया उसी को उसने वीरान कर दिया। जिन लोगों को उसने कत्ल किया था उन्हीं की खोपड़ियों के मीनारों से वह रास्ते को सजाता चला गया। दिल्ली खुद मुर्दों का शहर बन गई। सौभाग्य से वह बहुत आगे नहीं बढ़ा और पंजाब के कुछ हिस्सों और दिल्ली को ही यह भयानक विपत्ति झेलनी पड़ी।

दिल्ली को मौत की नींद से उठने में कई वर्ष लगे। जागने पर वह इस विशाल साम्राज्य की राजधानी नहीं रह गई थी। तैमूर के हमले ने साम्राज्य को

2018-19

तोड़ दिया था और उसके खंडहरों पर दक्षिण में कई राज्य उठ खड़े हुए थे। इससे बहुत पहले, चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में, दो बड़े राज्य कायम हुए थे–गुलबर्ग जो बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है और विजयनगर का हिंदू राज्य।

दिल्ली की तबाही के बाद उत्तरी भारत कमज़ोर पड़कर टुकड़ों में बँट गया। दक्षिण भारत की स्थिति बेहतर थी और वहाँ के राज्यों में सबसे बड़ी और शक्तिशाली रियासत विजयनगर थी। इस रियासत और नगर ने उत्तर के बहुत से हिंदू शरणार्थियों को आकर्षित किया। उपलब्ध वृत्तांतों से पता चलता है कि शहर बहुत समृद्ध और सुंदर था।

जब दक्षिण में विजयनगर तरक्की कर रहा था, उस समय उत्तर की पहाड़ियों से होकर एक और हमलावर दिल्ली के पास, पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में आया। उसने 1526 ई. में दिल्ली के सिंहासन को जीत लिया। मध्य एशिया के तैमूर वंश का यह तुर्क–मंगोल बाबर था। भारत में मुगल साम्राज्य की नींव उसी ने डाली।

समन्वय और मिली–जुली संस्कृति का विकास
कबीर, गुरु नानक और अमीर खुसरो

भारत पर मुस्लिम आक्रमण की या भारत में मुस्लिम युग की बात करना गलत और भ्रामक है। इस्लाम ने भारत पर आक्रमण नहीं किया, वह भारत में कुछ सदियों के बाद आया। आक्रमण तुर्कों (महमूद) ने किया था, अफ़गानों ने किया था और उसके बाद तुर्क–मंगोल या मुगल आक्रमण हुआ। इनमें से बाद के दो आक्रमण महत्त्वपूर्ण थे। अफ़गानों को हम भारत का सीमावर्ती समुदाय कह सकते हैं, जो भारत के लिए पूरी तरह अजनबी भी नहीं माने जा सकते। उनके राजनीतिक शासन के काल को हिंद–अफ़गान युग कहना चाहिए। मुगल भारत के लिए बाहर के और अजनबी लोग थे, फिर भी वे भारतीय ढाँचे में बड़ी तेज़ी से समा गए और उन्होंने हिंद–मुगल युग की शुरुआत की।

अफ़गान शासक और जो लोग उनके साथ आए थे वे भी भारत में समा गए। उनके परिवारों का पूरी तरह भारतीयकरण हो गया। भारत को वे अपना

© NCERT not to be republished

2018-19

घर और बाकी सारी दुनिया को विदेश मानने लगे। राजनीतिक झगड़ों के बावजूद उन्हें सामान्यतः इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया और राजपूत राजाओं में से भी बहुतों ने उन्हें अपना अधिराज मान लिया। पर कुछ ऐसे राजपूत सरदार थे जिन्होंने उनकी अधीनता अस्वीकार कर दी और भयंकर झगड़े हुए। दिल्ली के प्रसिद्ध सुल्तान फ़िरोज़शाह की माँ हिंदू थी। यही स्थिति गयासुद्दीन तुगलक की थी। अफ़गानी, तुर्की और हिंदू सामंतों के बीच विवाह होते तो थे पर आमतौर पर नहीं। दक्षिण में गुलबर्ग के मुस्लिम शासक ने विजयनगर की हिंदू राजकुमारी से बहुत धूमधाम से विवाह किया था।

इस दौर में कुशल प्रशासन का विकास हुआ और यातायात के साधनों में विशेष रूप से सुधार हुआ – मुख्यतः सैनिक कारणों से। सरकार अब और अधिक केंद्रीकृत हो गई गोकि उसने इस बात का ध्यान रखा कि स्थानीय रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप न करे। शेरशाह (जिसने मुगल काल के आरंभ में हस्तक्षेप किया था) अफ़गान शासकों में सबसे योग्य था। उसने ऐसी मालगुज़ारी व्यवस्था की नींव डाली जिसका आगे चलकर अकबर ने विकास किया। अकबर के प्रसिद्ध राजस्व मंत्री टोडरमल की नियुक्ति पहले शेरशाह ने ही की थी। हिंदुओं की क्षमता का अफ़गान शासक अधिकाधिक उपयोग करते गए।

भारत और हिंदू धर्म पर अफ़गानों की विजय का दोहरा असर पड़ा। तत्काल प्रभाव यह पड़ा कि लोग अफ़गान शासन में पड़ने वाले क्षेत्रों से दूर भागकर दक्षिण की ओर चले गए। जो बचे रहे उन्होंने विदेशी तौर-तरीकों और प्रभावों से अपने को बचाने के लिए वर्ण-व्यवस्था को और कठोर बना दिया। दूसरी ओर विचारों और जीवन दोनों में इस विदेशी ढंग की ओर धीरे-धीरे लोगों का रुझान पैदा होने लगा। परिणामतः समन्वय अपने आप रूप लेने लगा। वास्तुकला की नयी शैलियाँ उपजीं, खाना-पहनना बदल गया और जीवन अनेक रूपों में प्रभावित हुआ। यह समन्वय संगीत में विशेष रूप से दिखाई पड़ा। भारत की प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करते हुए, उसने कई दिशाओं में विकास किया।

2018-19

फ़ारसी भाषा दरबार की सरकारी भाषा बन गई और फ़ारसी के बहुत से शब्द बोलचाल की भाषा में प्रवेश कर गए। इसके साथ ही जन-भाषाओं का भी विकास किया गया।

भारत में जिन दुर्भाग्यपूर्ण बातों में वृद्धि हुई उनमें एक परदा प्रथा थी। ऐसा क्यों हुआ, यह स्पष्ट नहीं है। पर भारत में परदा प्रथा का विकास मुगल-काल में तब हुआ जब यह हिंदुओं और मुसलमानों दोनों में पद और आदर की निशानी समझा जाने लगा। औरतों को अलग परदे में रखने की यह प्रथा उन इलाकों में ऊँचे वर्गों में विशेष रूप से फैली जहाँ मुसलमानों का प्रभाव सबसे अधिक था—यानी उस मध्य और विशाल पूर्वी प्रदेश में जिसमें दिल्ली, संयुक्त प्रांत, राजपूताना, बिहार और बंगाल आते हैं। लेकिन अजीब बात है कि पंजाब और सरहदी सूबे में जो मुख्यत: मुस्लिम इलाके थे परदे की प्रथा उतनी कड़ी नहीं थी।

दिल्ली में अफ़गानों के प्रतिष्ठित होने के साथ, पुराने और नए के बीच एक समन्वय रूप ले रहा था। इनमें से अधिकतर परिवर्तन उच्च वर्गों में, अमीर उमरावों में हुए। इनका असर विशाल जन समूह पर, विशेषकर देहाती जनता पर नहीं पड़ा। उनकी शुरुआत दरबारी समाज में होती थी और वे शहरों और कस्बों में फैल जाते थे। इस तरह उत्तरी भारत में दिल्ली और संयुक्त प्रांत इसके केंद्र बने, ठीक उसी तरह जैसे ये पुरानी आर्य संस्कृति का केंद्र रहे हैं। पर इस आर्य संस्कृति का एक बड़ा हिस्सा दक्षिण की ओर खिसक गया, जो हिंदू रूढ़िवादिता का गढ़ बन गया।

जब तैमूर के हमले से दिल्ली की सल्तनत कमज़ोर हो गई, तो जौनपुर (संयुक्त प्रांत) में एक छोटी-सी मुस्लिम रियासत खड़ी हुई। पूरी पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान यह रियासत कला, संस्कृति और धार्मिक सहिष्णुता का केंद्र रही।

विकसित होती हुई आम भाषा हिंदी को यहाँ प्रोत्साहित किया गया और हिंदुओं और मुसलमानों के धर्मों के बीच समन्वय करने का प्रयास भी किया गया। लगभग इसी समय उत्तर में सुदूर कश्मीर में एक स्वतंत्र मुस्लिम शासक

ज़ैनुलआबदीन को उसकी सहिष्णुता और संस्कृत के अध्ययन और प्राचीन संस्कृति को प्रोत्साहित करने के कारण बहुत यश मिला।

पूरे भारत में यह नयी उत्तेजना सक्रिय थी और नए विचार लोगों को परेशान कर रहे थे। भारत विदेशी तत्वों को आत्मसात करने का प्रयास कर रहा था और इस प्रक्रिया में थोड़ा-बहुत खुद भी बदल रहा था। इसी बीच कुछ नए ढंग के सुधारक खड़े हुए जिन्होंने इस समन्वय का जानबूझ कर समर्थन किया और अक्सर वर्ण-व्यवस्था की निंदा या उपेक्षा की। पंद्रहवीं शताब्दी में दक्षिण में रामानंद और उनके उनसे भी अधिक प्रसिद्ध शिष्य कबीर हुए। कबीर की साखियाँ और पद आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। उत्तर में गुरु नानक हुए जो सिख-धर्म के संस्थापक माने जाते हैं। पूरे हिंदू धर्म पर इन सुधारकों के नए विचारों का प्रभाव पड़ा और भारत में इस्लाम का स्वरूप भी दूसरे स्थानों पर उसके स्वरूप से किसी हद तक भिन्न हो गया। इस्लाम के एकेश्वरवाद ने हिंदू धर्म को प्रभावित किया और हिंदुओं के अस्पष्ट बहुदेववाद का प्रभाव भारतीय मुसलमानों पर पड़ा। इनमें से अधिकतर भारतीय मुसलमान ऐसे थे जिन्होंने धर्म-परिवर्तन किया था और उनका पालन-पोषण प्राचीन परंपराओं में हुआ था और वे अब भी उन्हीं से घिरे थे। उनमें बाहर से आने वालों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी।

विदेशी तत्वों के भारत में अधिकाधिक आत्मसात होने का सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत, उनके द्वारा देश की आम भाषा का प्रयोग था, गरचे दरबार की भाषा फ़ारसी बनी रही। आरंभ के लेखकों में सबसे प्रसिद्ध अमीर खुसरो थे। वे तुर्क थे और उनका परिवार दो या तीन पीढ़ियों से संयुक्त राज्य में बसा हुआ था। वे चौदहवीं शताब्दी के दौरान कई अफ़गान सुल्तानों के शासन काल में रहे। वे फ़ारसी के चोटी के कवि थे और उन्हें संस्कृत का भी ज्ञान था। वे महान संगीतकार थे और उन्होंने भारतीय संगीत में कई मौलिक उद्भावनाएँ की थीं। कहा जाता है कि भारत के लोकप्रिय तंत्री वाद्य सितार का आविष्कार उन्होंने ही किया था। उन्होंने ऐसे कई विषयों पर रचना की, जिनमें भारत ने विशेष प्रगति की थी। इनमें धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र,

not to be republished © NCERT

2018-19

भाषा और व्याकरण (संस्कृत) के अतिरिक्त संगीत, गणित, विज्ञान और आम का फल है।

उनकी प्रसिद्धि का आधार उनके लोकप्रचलित गीत हैं जिन्हें उन्होंने बोलचाल की सामान्य हिंदी में लिखा था। उन्होंने ग्रामीण जनता से केवल उसकी भाषा ही नहीं ली बल्कि उनके रीति-रिवाज और रहन-सहन के ढंग का भी वर्णन किया। उन्होंने विभिन्न ऋतुओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गीत लिखे। वे गीत अब भी उत्तर और मध्य भारत के किसी भी गाँव या नगर में सुनाई पड़ सकते हैं।

अमीर खुसरो ने अनगिनत पहेलियाँ भी लिखीं। अपने लंबे जीवन-काल में ही खुसरो अपने गीतों और पहेलियों के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गए थे। ऐसी कोई और मिसाल नहीं मिलती जहाँ छह सौ साल पहले लिखे गए गीतों की लोकप्रियता आम जनता के बीच बराबर बनी रही हो और बोलों में बिना परिवर्तन किए वे अब भी उसी तरह गाए जाते हों।

बाबर और अकबर – भारतीयकरण की प्रक्रिया

अकबर भारत में मुगल खानदान का तीसरा शासक था, फिर भी साम्राज्य की बुनियाद उसी ने पक्की की। उसके बाबा ने दिल्ली के सिंहासन पर 1526 ई. में विजय प्राप्त कर ली थी। भारत में आने के चार वर्ष के भीतर ही बाबर की मृत्यु हो गई। उसका अधिकतर समय युद्ध में और आगरा में एक भव्य राजधानी बनाने में बीता। यह काम उसने कुस्तुंतुनिया के एक प्रसिद्ध वास्तुशिल्पी को बुलाकर कराया।

बाबर का व्यक्तित्व आकर्षक है, वह नयी जागृति का शहज़ादा है, बहादुर और साहसी, जो कला और साहित्य तथा अच्छे रहन-सहन का शौकीन है। उसका पौत्र अकबर उससे भी अधिक आकर्षक और गुणवान है। वह बहादुर और दुस्साहसी है, योग्य सेनानायक है और इस सबके अलावा विनम्र और दयालु है, आदर्शवादी और स्वप्नदर्शी है। साथ ही वह लोगों का ऐसा नेता है जो अपने अनुयायियों में तीव्र स्वामिभक्ति उत्पन्न कर सके। वह

2018-19

लोगों के दिल और दिमाग पर विजय हासिल करना चाहता था। अखंड भारत का पुराना सपना उसमें फिर आकार लेने लगा–ऐसा भारत जो केवल राजनीतिक दृष्टि से एक राज्य न हो बल्कि जिसकी जनता परस्पर सहज संबद्ध हो।

1556 ई. से आरंभ होने वाले अपने लंबे शासन के लगभग पचास वर्ष के दौरान वह बराबर इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोशिश करता रहा। बहुत से स्वाभिमानी राजपूत सरदारों को उसने अपनी ओर मिला लिया। उसने एक राजपूत राजकुमारी से शादी की। उसका बेटा और वारिस जहाँगीर इस तरह आधा मुगल और आधा हिंदू राजपूत था। जहाँगीर का बेटा शाहजहाँ भी राजपूत माँ का बेटा था। इसलिए यह तुर्क-मंगोल वंश, तुर्क या मंगोल होने की अपेक्षा कहीं अधिक भारतीय था।

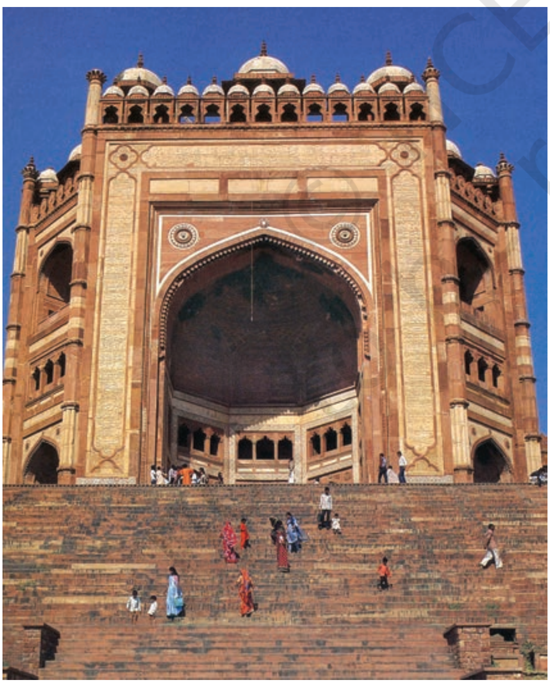

बुलंद दरवाज़ा (आगरा)

राजपूत राजघरानों से संबंध बनाने से उसका साम्राज्य बहुत मज़बूत हुआ। इस मुगल-राजपूत सहयोग ने, जो बाद के शासकों के शासन में भी इसी तरह चलता रहा, केवल सरकार, प्रशासन और सेना को ही नहीं, कला, संस्कृति और रहन-सहन को भी प्रभावित किया। पर अकबर को राजपूताना में मेवाड़ के राणा प्रताप की अभिमानी और अदम्य आत्मा का दमन करने में सफलता नहीं मिली। राणा प्रताप ने एक ऐसे व्यक्ति से जिसे वह विदेशी विजेता समझता था औपचारिक संबंध जोड़ने की बजाय जंगलों में मारे-मारे फिरना बेहतर समझा।

अकबर ने अपने चारों ओर अत्यंत प्रतिभाशाली लोगों का समुदाय इकट्ठा किया था जो उसके आदर्शों के प्रति समर्पित थे। इन लोगों में फ़ैजी और अबुलफ़ज़ल नाम के दो मशहूर भाई, बीरबल, राजा मानसिंह और अब्दुल रहीम खानखाना शामिल थे। उसने एक ऐसे नए समन्वित धर्म की शुरुआत करने का प्रयत्न किया जो सबको मान्य हो। स्वयं अकबर निश्चित रूप से हिंदुओं में उतना ही लोकप्रिय था जितना मुसलमानों में। मुगल वंश भारत में इस तरह स्थापित हुआ जैसे वह भारत का अपना वंश हो।

यांत्रिक उन्नति और रचनात्मक शक्ति में एशिया और यूरोप के बीच अंतर

अकबर के दरबार के पुर्तगाली जेसुइट बताते हैं कि उसकी दिलचस्पी बहुत सी बातों में थी और वह उन सबके बारे में जानकारी हासिल करना चाहता था। उसे सैनिक और राजनीतिक मामलों का पूरा ज्ञान तो था ही, साथ ही बहुत सी यांत्रिक कलाओं का भी। फिर भी यह अजीब बात है कि उसकी जिज्ञासा एक बिंदु पर जाकर रुक गई।

यदि अकबर ने इस तरफ़ ध्यान दिया होता और पता लगाया होता कि संसार के दूसरे हिस्सों में क्या हो रहा है तो उसने सामाजिक परिवर्तन की

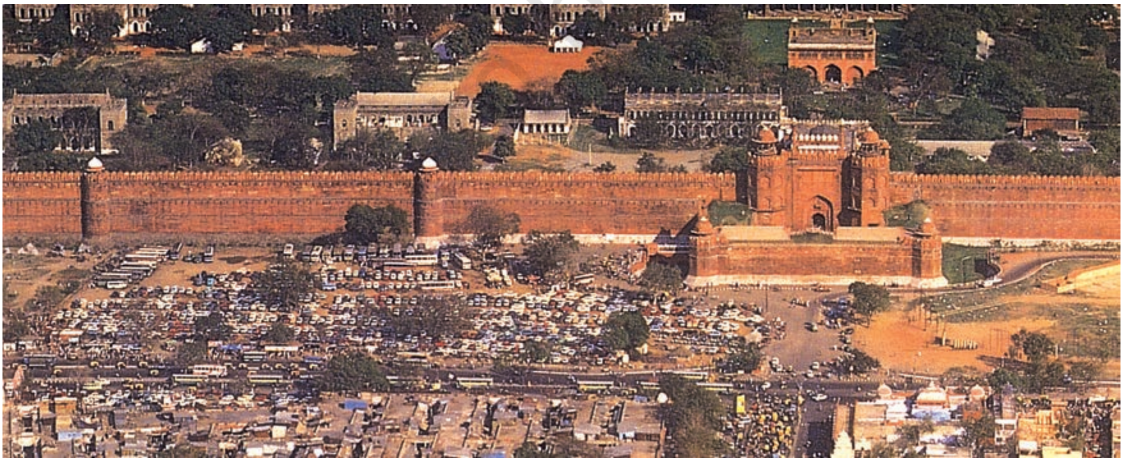

लाल किला (दिल्ली)

ताजमहल (आगरा)

बुनियाद रख दी होती। लेकिन उसके सामने बड़ी समस्या यह थी कि वह इस्लाम के साथ राष्ट्रीय धर्म और लोगों के रीति-रिवाजों का मेल कराके राष्ट्रीय एकता कैसे कायम करे।

इस तरह भारत की सामाजिक स्थिति में अकबर भी कोई बुनियादी अंतर पैदा नहीं कर सका और उसके बाद भारत ने फिर अपना गतिहीन और अपरिवर्तनशील जीवन अपना लिया।

अकबर ने जो इमारत खड़ी की थी वह इतनी मज़बूत थी कि दुर्बल उत्तराधिकारियों के बावजूद वह सौ साल तक कायम रही। सिंहासन के लिए शहज़ादों में लगातार युद्ध होते रहे और केंद्रीय शक्ति कमज़ोर पड़ती गई। पर दरबार का प्रताप बना रहा और सारे एशिया और यूरोप में आलीशान मुगल बादशाहों का यश फैल गया। वास्तुकला की दृष्टि से दिल्ली और आगरा में सुंदर इमारतें तैयार हुईं। यह भारतीय-मुगल कला दक्षिण और उत्तर में मंदिरों और दूसरी इमारतों की सजावट और अलंकरण की शैली से एकदम भिन्न थी। प्रेरित वास्तुकारों और निर्माताओं ने आगरा में ताजमहल को मुहब्बत भरे हाथों से खड़ा किया।

उत्तर-पश्चिम से आने वाले आक्रमणकारियों और इस्लाम का भारत पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस टकराहट ने उन बुराइयों को खोलकर रख दिया जो हिंदू समाज में घर कर गई थीं। जात-पाँत की सड़ाँध, अछूत प्रथा और अलग-अलग रहने की बेढ़ब प्रवृत्ति। इस्लाम के भाईचारे और अपना मानने वालों के बीच

बराबरी के सिद्धांतों का विशेषकर उन लोगों पर गहरा असर पड़ा जिन्हें हिंदू समाज में बराबरी का दर्जा देने से इंकार कर दिया गया था। इस विचारधारात्मक टकराहट से कई आंदोलन उठ खड़े हुए जिनका उद्देश्य धार्मिक समन्वय करना था।

यह बात ध्यान देने लायक है कि वर्गों का प्रभाव इस हद तक था कि नियमत: लोगों ने इस्लाम में धर्म-परिवर्तन सामूहिक रूप से किया। ऊँची जाति के लोगों में व्यक्ति कभी-कभार अकेले धर्म-परिवर्तन कर लेता था पर निम्न श्रेणी के लोगों में मुहल्ले में एक जाति के लोग, या फिर लगभग सारा गाँव ही धर्म बदल लेता था। इसलिए उनका सामूहिक जीवन और काम-काज पहले की ही तरह चलते रहे। केवल पूजा के तरीकों आदि में छोटे-मोटे अंतर अवश्य आ गए। इस कारण आज हम देखते हैं कि कुछ विशेष पेशे और शिल्प ऐसे हैं जिन पर मुसलमानों का एकाधिकार है। इस तरह कपड़ा बुनने का काम मुख्यत: और ज़्यादातर हिस्सों में पूरी तरह मुसलमान करते हैं।

भारत में रहने वाले अधिकतर मुसलमानों ने हिंदू धर्म से धर्म-परिवर्तन किया था। कुछ लंबे संपर्क के कारण भारत के हिंदुओं और मुसलमानों ने बहुत-सी समान विशेषताएँ, आदतें, रहने-सहने के ढंग और कलात्मक रुचियाँ विकसित कीं। वे शांतिपूर्वक एक कौम के लोगों की तरह साथ-साथ रहा करते थे। एक-दूसरे के त्योहारों और जलसों में शरीक होते थे, एक ही भाषा बोलते थे तथा बहुत कुछ एक ही तरह से रहते थे और एकदम एक जैसी आर्थिक समस्याओं का सामना करते थे।

यह तमाम आपसदारी और एक साथ रहना-सहना उस वर्ण-व्यवस्था के बावजूद हुआ जो ऐसे मेल-मिलाप में बाधक थी। एकाध उदाहरणों को छोड़कर आपस में शादी-ब्याह नहीं होते थे और जब ऐसा होता था तो दोनों पक्ष मिलकर एक नहीं होते थे, आपसी खान-पान भी नहीं होता था, पर इस मामले में बहुत कड़ाई नहीं बरती जाती थी। औरतों के परदे में अलग-थलग रहने से सामाजिक जीवन के विकास में रुकावट आई।

गाँव की आम जनता में अर्थात् आबादी के बड़े हिस्से में जीवन मिला-जुला था और उनमें सामूहिकता कहीं अधिक थी। गाँव के सीमित घेरे के भीतर हिंदू और मुसलमानों के बीच गहरे संबंध थे। वर्ण-व्यवस्था से कोई बाधा नहीं होती थी और हिंदुओं ने मुसलमानों को भी एक जात मान लिया था। वे एक दूसरे के त्योहारों में शरीक होते थे और कुछ अर्द्ध-धार्मिक से त्योहार दोनों के बीच समान रूप से मनाए जाते थे। उनके लोक-गीत भी एक ही थे। इनमें से ज़्यादातर लोग किसान, दस्तकार और शिल्पी थे।

मुगल शासन-काल के दौरान बहुत से हिंदुओं ने दरबार की भाषा फ़ारसी में पुस्तकें लिखीं। इनमें से कुछ पुस्तकें कालजयी रचनाएँ मानी जाती हैं। इसी समय मुसलमान विद्वानों ने फ़ारसी में संस्कृत की पुस्तकों का अनुवाद किया और हिंदी में लिखा। हिंदी के सबसे प्रसिद्ध कवियों में दो हैं मलिक मोहम्मद जायसी, जिन्होंने *पद्मावत* लिखा और अब्दुल रहीम खानखाना, जो अकबर-दरबार के अमीरों में थे और उनके संरक्षक के पुत्र थे। खानखाना अरबी, फ़ारसी और संस्कृत तीनों भाषाओं के विद्वान थे और उनकी हिंदी कविता का स्तर बहुत ऊँचा था। कुछ समय तक वे शाही सेना के सिपहसालार रहे, फिर भी उन्होंने मेवाड़ के उन राणा प्रताप की प्रशंसा में लिखा जो बराबर अकबर से युद्ध करते रहे और उनके सामने कभी हथियार नहीं डाले।

औरंगज़ेब ने उल्टी गंगा बहाई – हिंदू राष्ट्रवाद का उभार – शिवाजी

औरंगज़ेब समय के विपरीत चलने वाला शासक था। अपनी सारी योग्यता और उत्साह के बावजूद उसने अपने पूर्वजों के द्वारा किए गए कामों पर पानी फेरने का प्रयास किया। वह धर्मांध और कठोर नैतिकतावादी था। उसे कला या साहित्य से कोई प्रेम नहीं था। हिंदुओं पर पुराना, घृणित जज़िया-कर लगाकर और उनके बहुत से मंदिरों को तुड़वाकर उसने अपनी प्रजा के बहुत बड़े हिस्से को नाराज़ कर दिया। उसने उन अभिमानी राजपूतों को भी नाराज़ कर दिया जो मुगल साम्राज्य के अवलंब और स्तंभ थे। उत्तर में सिख उठ

2018-19

© NCERT not to be republished

खड़े हुए। वे हिंदू और मुस्लिम विचारों का किसी हद तक समन्वय करने वाले शांतिप्रिय समुदाय के प्रतिनिधि थे जो दमन और अत्याचार के विरुद्ध एक सैनिक बिरादरी के रूप में संगठित हो गए। भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर उसने प्राचीन राष्ट्रकूटों के वंशज लड़ाकू मराठों को क्रुद्ध कर दिया, ठीक ऐसे समय जब उनके बीच एक अद्‌भुत सेनानायक उठ खड़ा हुआ था।

मुगल साम्राज्य के दूर-दूर तक फैले क्षेत्रों में उत्तेजना फैल गई और पुनर्जागरणवादी विचार पनपने लगा जिसमें धर्म और राष्ट्रवाद का मेल था। वह आधुनिक युग जैसा धर्मनिरपेक्ष ढंग का राष्ट्रवाद नहीं था, न ही इसकी व्याप्ति पूरे भारत में थी।

धर्म और राष्ट्रीयता के मेल ने दोनों ही तत्वों से शक्ति और संबद्धता हासिल की, लेकिन उसकी कमज़ोरी भी इसी मेल से पैदा हुई थी। यह केवल खास किस्म की और आंशिक राष्ट्रीयता थी जिसमें धर्म के क्षेत्र से बाहर पड़ने वाले तमाम भारतीय तत्वों का समावेश नहीं था। हिंदू राष्ट्रवाद उस व्यापक राष्ट्रीयतावाद के मार्ग में बाधक था जो धर्म और जाति के भेदभाव से ऊपर उठ जाती है। विशेषकर मराठों की अवधारणा व्यापक थी और जैसे-जैसे उनकी शक्ति बढ़ी उनके साथ इस अवधारणा का भी विकास हुआ। 1784 ई. में वारेन हेस्टिंग ने लिखा था, "हिंदोस्तान और दक्खिन के तमाम लोगों में से केवल मराठों के मन में राष्ट्र प्रेम की भावना है, जिसकी गहरी छाप राष्ट्र के हर व्यक्ति के मन पर है।" मराठे अपनी राजनीतिक और सैनिक व्यवस्था और आदतों में उदार थे और उनके भीतर लोकतांत्रिक भावना थी। इससे उन्हें शक्ति मिलती थी। शिवाजी औरंगज़ेब से लड़ा ज़रूर पर उसने मुसलमानों को खुलकर नौकरियाँ दीं।

मुगल साम्राज्य के खंडित होने का महत्त्वपूर्ण कारण आर्थिक ढाँचे का चरमराना था। किसान बार-बार विद्रोह करते थे, इनमें से कुछ आंदोलन बड़े पैमाने पर हुए थे। 1669 ई. के बाद जाट किसान जो राजधानी से बहुत दूर नहीं थे बार-बार दिल्ली सरकार के खिलाफ़ खड़े होते रहे। गरीब लोगों का एक अन्य विद्रोह सतनामियों का था।

उस समय जब साम्राज्य में फूट और बगावत फैली हुई थी, पश्चिमी भारत में नयी मराठा शक्ति विकास कर रही थी और अपने को मज़बूत कर रही थी। शिवाजी, जिनका जन्म 1627 ई. में हुआ था, पहाड़ी इलाकों के सख्तजान लोगों के आदर्श छापामार नेता थे। उनके घुड़सवार दूर-दूर तक छापे मारते थे। उन्होंने सूरत को, जहाँ अंग्रेज़ों की कोठियाँ थीं, लूटा और मुगल साम्राज्य के दूर-दूर तक फैले क्षेत्रों पर चौथ-कर लगाया। उन्होंने मराठों को एक शक्तिशाली संगठित फ़ौजी दल का रूप दिया, उन्हें राष्ट्रीयतावादी पृष्ठभूमि प्रदान की और दुर्जेय शक्ति का रूप दिया। 1680 ई. में उनकी मृत्यु हो गई, लेकिन मराठा शक्ति तब तक बढ़ती गई जब तक भारत पर उसका प्रभुत्व नहीं हो गया।

प्रभुत्व के लिए मराठों और अंग्रेज़ों के बीच संघर्ष अंग्रेज़ों की विजय

सन् 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद 100 वर्ष तक भारत पर अधिकार करने के लिए विविध रूपों में संघर्ष चलता रहा। अट्ठारहवीं शताब्दी में भारत पर अधिकार के चार दावेदार थे—इनमें से भारतीय थे मराठे और दक्षिण में हैदरअली और उसका बेटा टीपू सुलतान, विदेशी थे फ्रांसीसी और अंग्रेज़। सदी के पूर्वार्द्ध में यह लगभग निश्चित जान पड़ता था कि मराठे पूरे भारतवर्ष पर अपनी हुकूमत कायम कर लेंगे और मुगल शासन के उत्तराधिकारी होंगे। कोई शक्ति इतनी मज़बूत नहीं रह गई थी कि उनका सामना कर सके।

ठीक उसी समय (1739) उत्तर-पश्चिम में एक नया बवंडर उठ खड़ा हुआ और ईरान का नादिरशाह दिल्ली पर टूट पड़ा। उसने बड़ी मार-काट और लूटपाट मचाई और अपने साथ बेशुमार दौलत ले गया जिसमें प्रसिद्ध तख्तेताऊस भी था। दिल्ली के शासक कमज़ोर और नपुंसक हो चुके थे और मराठों से नादिरशाह की टकराहट नहीं हुई। उसके हमले से मराठों का काम आसान हो गया। वे बाद के वर्षों में पंजाब में भी फैल गए। एक बार फिर ऐसा लगा कि भारत मराठों के अधीन हो जाएगा।

2018-19

नादिरशाह के आक्रमण से दिल्ली के मुगल शासकों का अधिकार और राज्य का रहा सहा दावा भी खत्म हो गया। जिस किसी के पास उन्हें नियंत्रित करने की शक्ति होती, वे उसी के हाथ की कठपुतली भर रह जाते। नादिरशाह के आने से पहले ही उनकी यह हालत हो चुकी थी। उसने इस प्रक्रिया को पूरा कर दिया। फिर भी चले आते रिवाजों के दबाव के कारण अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी और दूसरे लोग भी उनके पास प्लासी की लड़ाई से पहले तक उपहार और कर भेजते रहे, बाद में भी लंबे समय तक कंपनी दिल्ली के उस बादशाह के एजेंट के रूप में काम करती रही, जिसके नाम के सिक्के 1835 ई. तक चलते रहे।

नादिरशाह के हमले का दूसरा परिणाम यह हुआ कि अफ़गानिस्तान भारत से अलग हो गया। अफ़गानिस्तान जो बहुत लंबे समय से भारत का हिस्सा था, उससे कटकर अब नादिरशाह के राज्य का हिस्सा बन गया।

बंगाल में, जालसाज़ी और बगावत को बढ़ावा देकर, क्लाइव ने थोड़े से प्रयास से सन् 1757 में प्लासी का युद्ध जीत लिया। इस तारीख से कभी-कभी भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य की शुरुआत मानी जाती है। जल्दी ही पूरा बंगाल और बिहार अंग्रेज़ों के हाथ आ गया। इनके शासन की शुरुआत के साथ ही 1770 ई. में इन दोनों सूबों में भयंकर अकाल पड़ा जिससे इस घनी आबादी वाले इलाके की एक तिहाई से अधिक आबादी नष्ट हो गई।

दक्षिण में, अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष, जो विश्व-व्यापी युद्ध का ही एक हिस्सा था, अंग्रेज़ों की विजय में समाप्त हुआ और भारत से फ्रांसीसियों का लगभग नामोनिशान मिट गया।

फ्रांसीसियों के भारत से हट जाने के बाद तीन ताकतें बाकी रह गईं जो अधिकार के लिए संघर्ष कर रही थीं—मराठा संगठन, दक्षिण में हैदरअली और अंग्रेज़। प्लासी में उनकी जीत और बंगाल और बिहार में फैलने के बावजूद भारत में ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी जो अंग्रेज़ों को ऐसी शक्ति के रूप में देखते हों जिसकी नियति में पूरे भारत पर राज्य करना हो। अब भी सबसे पहला स्थान मराठों को ही दिया जाता था। वे सारे पश्चिम

2018-19

और मध्य भारत में यहाँ तक कि दिल्ली तक फैले हुए थे और उनका साहस और युद्ध करने की योग्यता प्रसिद्ध थी। हैदरअली और टीपू सुल्तान भी विकट विरोधी थे जिन्होंने अंग्रेज़ों को बुरी तरह हराया था और ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्ति को लगभग खत्म कर दिया था। पर वे दक्षिण तक सीमित रहे और पूरे भारत पर उनका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। हैदरअली एक अद्‌भुत व्यक्ति और भारतीय इतिहास का उल्लेखनीय व्यक्तित्व था। उसका आदर्श किसी हद तक राष्ट्रीय था और उसमें कल्पनाशील नेता के गुण थे।

मैसूर के टीपू सुल्तान को अंग्रेज़ों ने अंततः 1799 ई. में पराजित कर दिया और इस तरह मराठों और अंग्रेज़ों की ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच आखिरी मुकाबले के लिए मैदान साफ़ हो गया।

लेकिन मराठा सरदारों के बीच आपसी वैर था और अंग्रेज़ों ने उनसे अलग-अलग युद्ध करके उन्हें पराजित किया। उन्होंने 1804 ई. में आगरा के पास अंग्रेज़ों को बुरी तरह हराया, लेकिन 1818 ई. तक आते-आते मराठा शक्ति अंतिम रूप से कुचल दी गई और उन बड़े सरदारों ने जो मध्य भारत में उनका प्रतिनिधित्व कर रहे थे, ईस्ट इंडिया कंपनी की अधीनता स्वीकार कर ली। अंग्रेज़ इसके बाद भारत के अधिकांश भाग के शासक हो गए और वे देश पर सीधे या फिर अपने अधीनस्थ राजाओं के माध्यम से शासन करने लगे।

हमें बार-बार याद दिलाया जाता है कि अंग्रेज़ों ने भारत को अव्यवस्था और अराजकता से बचाया। यह बात इस हद तक सही है कि उन्होंने उस युग के बाद जिसे मराठों ने 'आतंक का युग' कहा है, सुव्यवस्थित शासन कायम किया। लेकिन यह अव्यवस्था और अराजकता कुछ दूर तक ईस्ट इंडिया कंपनी और भारत में उनके प्रतिनिधियों की नीति के कारण ही फैली थी। यह कल्पना भी की जा सकती है कि अंग्रेज़ों की सहायता के बिना भी संघर्ष की समाप्ति के बाद शांति और व्यवस्थित शासन की स्थापना हो ही सकती थी।

रणजीत सिंह और जय सिंह

आतंक के इस दौर में जनता सामान्यतः त्रस्त और पस्त ज़रूर थी पर अनेक व्यक्ति ऐसे अवश्य रहे होंगे, जो उस समय सक्रिय नयी शक्तियों को

2018-19

समझना चाहते होंगे लेकिन घटनाओं की बाढ़ ने उन्हें दबा दिया और उनका कोई प्रभाव न पड़ सका।

ऐसे व्यक्तियों में जिनमें जिज्ञासा भरी हुई थी महाराजा रणजीत सिंह थे। वे जाट सिख थे जिन्होंने पंजाब में अपना साम्राज्य कायम किया था। बाद में यह साम्राज्य कश्मीर और सरहदी सूबे तक फैल गया। अपनी कमज़ोरियों के बावजूद वह एक अद्‌भुत व्यक्ति था। वह अत्यंत मानवीय था। उसने एक राज्य और शक्तिशाली सेना का निर्माण किया, फिर भी वह खून-खराबा पसंद नहीं करता था। जब इंग्लैंड में छोटे-मोटे चोर-उचक्कों को भी मौत की सज़ा भोगनी पड़ती थी, उसने मौत की सज़ा बंद कर दी, चाहे जुर्म कितना ही बड़ा हो। युद्ध के सिवाय, उसने कभी किसी की जान नहीं ली, गरचे उसकी जान लेने की कोशिश एकाधिक बार की गई। उसका शासन निर्दयता और दमन से मुक्त था।

एक दूसरा पर कुछ और ही ढंग का भारतीय राजनेता, राजपूताने में जयपुर का सवाई जय सिंह था। उसका समय कुछ और पहले था और उसकी मृत्यु 1743 ई. में हुई थी। वह औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद होने वाली उथल-पुथल के समय हुआ था। वह इतना चतुर और अवसरवादी था कि एक के बाद एक लगने वाले धक्कों और परिवर्तनों के बावजूद बचा रहा। वह बहादुर योद्धा और कुशल राजनयिक तो था ही, इससे बढ़कर वह गणितज्ञ, खगोल विज्ञानी, और नगर-निर्माण करने वाला था और उसकी दिलचस्पी इतिहास के अध्ययन में थी।

जय सिंह ने जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, बनारस और मथुरा में बड़ी-बड़ी वेधशालाएँ बनाईं। उसने जयपुर नगर बसाया। उसने उस समय के कई यूरोपीय नगरों के नक्शे इकट्ठे किए और फिर अपना नक्शा खुद बनाया। इन पुराने यूरोपीय नगरों के कई नक्शे जयपुर के अजायबघर में सुरक्षित हैं। जयपुर नगर की योजना को अब भी नगर-निर्माण का आदर्श समझा जाता है।

लगातार युद्धों और दरबारी षड्‌यंत्रों के बीच अक्सर खुद उलझे रहने पर भी जय सिंह ने बहुत कुछ किया। जय सिंह की मृत्यु के केवल चार वर्ष पहले नादिरशाह का आक्रमण हुआ। भारतीय इतिहास के सबसे अधिक

© NCERT not to be republished
2018-19

अंधकारमय युग में जब उथल-पुथल, युद्ध और उपद्रवों से माहौल भरा था राजपूताना के ठेठ सामंती वातावरण में जय सिंह ने वैज्ञानिक की तरह उठकर काम किया, यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भारत की आर्थिक पृष्ठभूमि – इंग्लैंड के दो रूप

अपने आरंभिक दिनों में ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य काम था भारतीय माल लेकर यूरोप में व्यापार करना। कंपनी को इससे बहुत लाभ हुआ। भारतीय कारीगरों और शिल्पियों की कारीगरी इस स्तर की थी कि वे इंग्लैंड में उत्पादन के उच्चतर तकनीकों का बड़ी सफलता से मुकाबला कर सकते थे। जब इग्लैंड में मशीनों का युग शुरू हुआ, उस समय भी भारतीय वस्तुएँ इतनी बहुतायत से वहाँ भरी रहती थीं कि भारी चुंगी लगाकर और कुछ चीज़ों का तो आना बंद करके रोकना पड़ा। पर यह बात स्पष्ट है कि भारत का अर्थ-तंत्र चाहे जितना विकसित रहा हो वह बहुत दिनों तक उन देशों के माल से मुकाबला नहीं कर सकता था जिनका औद्योगीकरण हो चुका था। आवश्यक हो गया कि या तो वह अपने यहाँ कल-कारखाने लगाए या विदेशी आर्थिक घुस-पैठ के सामने समर्पण करे, जिसका आगे परिणाम होता राजनीतिक हस्तक्षेप। हुआ यह कि विदेशी राजनीतिक हुकूमत ने यहाँ पहले आकर बड़ी तेज़ी से उस अर्थ-तंत्र को नष्ट कर दिया, जिसे भारत ने खड़ा किया था और उसकी जगह कोई निश्चित और रचनात्मक चीज़ सामने नहीं आई। ईस्ट इंडिया कंपनी सर्वशक्तिमान थी। व्यापारियों की कंपनी होने के कारण वह धन कमाने पर तुली हुई थी। ठीक उस समय जब वह तेज़ी से अपार धन कमा रही थी एडम स्मिथ ने सन् 1776 में द *वैल्थ ऑफ़ नेशंस* में लिखा – "एकमात्र व्यापारियों की कंपनी की सरकार किसी भी देश के लिए सबसे बुरी सरकार है।"

इंग्लैंड का भारत में आगमन तब हुआ जब 1600 ई. में रानी एलिज़ाबेथ ने ईस्ट इंडिया कंपनी को परवाना दिया। उस समय शेक्सपीयर जीवित था, और लिख रहा था। 1608 ई. में मिल्टन का जन्म हुआ। उसके बाद हैंपडेन

2018-19

और कॉमवेल सामने आए और राजनीतिक क्रांति हुई। 1660 ई. में इंग्लैंड की रायल सोसाइटी की स्थापना हुई, जिसने विज्ञान की प्रगति में बहुत हिस्सा लिया। सौ साल बाद कपड़ा बुनने की तेज़ ढरकी का आविष्कार हुआ और उसके बाद तेज़ी से एक-एक करके कातने की कला, इंजन और मशीन के करघे निकले।

इन दो में से भारत कौन-सा इंग्लैड आया? शेक्सपीयर और मिल्टन वाला, शालीन बातों, लेखन और बहादुरी के कारनामों वाला, राजनीतिक क्रांति और स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाला, विज्ञान और तकनीक में प्रगति करने वाला इंग्लैंड या फिर बर्बर दंड संहिता और नृशंस व्यवहार वाला, वह इंग्लैंड जो सामंतवाद और प्रतिक्रियावाद से घिरा हुआ था?

ये इंग्लैंड एक दूसरे को प्रभावित करते हुए साथ-साथ चल रहे हैं और इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। फिर भी यह हो जाता है कि गलत इंग्लैड गलत भारत के संपर्क में आकर उसे बढ़ावा दे।

संयुक्त राज्य अमरीका के स्वतंत्र होने का समय लगभग वही है जो भारत के स्वतंत्रता खोने का समय है। यह सच है कि अमरीकियों में बहुत से गुण हैं और हममें बहुत-सी कमज़ोरियाँ हैं। यह भी सच है कि अमरीका में नयी शुरुआत के लिए बिलकुल अनछुआ और साफ़ मैदान था जबकि हम प्राचीन स्मृतियों और परंपराओं से जकड़े हुए थे। फिर भी इस बात की कल्पना करना कठिन नहीं है कि यदि ब्रिटेन ने भारत में यह बहुत भारी बोझ नहीं उठाया होता (जैसा कि उन्होंने हमें बताया है) और लंबे समय तक हमें स्वराज्य करने की वह कठिन कला नहीं सिखाई होती, जिससे हम इतने अनजान थे, तो भारत न केवल अधिक स्वतंत्र और अधिक समृद्ध होता, बल्कि विज्ञान और कला के क्षेत्र में और उन सभी बातों में जो जीवन को जीने योग्य बनाती हैं, उसने कहीं अधिक प्रगति की होती।

अध्याय 6

अंतिम दौर – एक

भारत राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से पहली बार एक अन्य देश का पुछल्ला बनता है

भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना उसके लिए एकदम नयी घटना थी जिसकी तुलना किसी और राजनीतिक अथवा आर्थिक परिवर्तन से नहीं की जा सकती थी। भारत पहले भी जीता जा चुका था, लेकिन ऐसे आक्रमणकारियों द्वारा जो उसकी सीमाओं में आकर बस गए और अपने को भारत के जीवन में शामिल कर लिया। उसने अपनी स्वाधीनता कभी नहीं खोई थी और वह कभी गुलाम नहीं बना था। भारत कभी ऐसी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में नहीं बँधा था जिसका संचालन-केंद्र उसकी धरती से बाहर हो। वह कभी ऐसे शासक वर्ग के अधीन नहीं रहा जो अपने मूल और चरित्र दोनों में स्थायी रूप से विदेशी था।

नया पूँजीवाद सारे विश्व में जो बाज़ार तैयार कर रहा था उससे हर सूरत में भारत के आर्थिक ढाँचे पर प्रभाव पड़ना ही था। लेकिन जो परिवर्तन हुआ वह स्वाभाविक नहीं था और उसने भारतीय समाज के पूरे आर्थिक और संरचनात्मक आधार का विघटन कर दिया। यह ऐसी व्यवस्था थी जिसका संचालन बाहर से होता था, जो उस पर लाद दी गई थी। भारत ब्रिटिश ढाँचे का औपनिवेशिक और खेतिहर पुछल्ला बन कर रह गया।

अंग्रेज़ों ने अपने अंग्रेज़ी नमूने का अनुसरण करते हुए बड़े जमींदार पैदा किए। उनका लक्ष्य था लगान की शक्ल में अधिक-से-अधिक रुपया, जल्दी-से-जल्दी इकट्ठा किया जाए। इसलिए एक ऐसे वर्ग को पैदा करना ज़रूरी समझा गया जिसके स्वार्थ अंग्रेज़ों के स्वार्थ से अभिन्न हों।

© NCERT not to be republished

ब्रिटिश शासन ने इस तरह अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया। इस व्यवस्था में ज़मींदार थे, राजा थे और सरकार के विभिन्न महकमों में पटवारी, गाँव के मुखिया से लेकर ऊपर तक कर्मचारियों की बहुत बड़ी संख्या थी। सरकार के दो खास महकमे थे–मालगुज़ारी और पुलिस। इन दोनों के ऊपर हर ज़िले में कलेक्टर या ज़िला मजिस्ट्रेट होता था जो शासन की धुरी था।

इस तरह भारत को साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए बिना कुछ भुगतान किए, अड्डे की तरह इस्तेमाल तो किया ही गया, इसके अलावा उसे इंग्लैंड में ब्रिटिश सेना के एक हिस्से के प्रशिक्षण का खर्च भी उठाना पड़ा। इस राशि को 'कैपिटेशन चार्ज' कहा जाता था। वास्तव में भारत को ब्रिटेन के हर तरह के दूसरे खर्च भी उठाने पड़ते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत में ब्रिटिश राज के इतिहास से किसी भी भारतीय को निश्चित रूप से मायूसी होगी और क्रोध आएगा। फिर भी, इससे अनेक क्षेत्रों में अंग्रेज़ों की श्रेष्ठता का, यहाँ तक कि हमारी फूट और कमज़ोरियों से लाभ उठाने की क्षमता का पता चलता है।

भारत में ब्रिटिश शासन के अंतर्विरोध

राममोहन राय – बंगाल में अंग्रेज़ी शिक्षा और समाचार पत्र

व्यक्तिगत रूप से अंग्रेज़ों ने जिनमें शिक्षाविद्, प्राच्य-विद्या विशारद्, पत्रकार, मिशनरी और कुछ अन्य लोग थे, पाश्चात्य संस्कृति को भारत लाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अंग्रेज़ी चिंतन और साहित्य और राजनीतिक परंपरा से भारत को परिचित कराने का श्रेय उन योग्य और उत्साही अंग्रेज़ों को ही है, जिन्होंने अपने चारों ओर उत्साही भारतीय विद्यार्थियों को इकट्ठा कर लिया था। शिक्षा के प्रसार को नापसंद करने के बावजूद, खुद ब्रिटिश सरकार को परिस्थितियों से मजबूर होकर अपनी बढ़ती हुई व्यवस्था के लिए क्लर्कों को प्रशिक्षित करके तैयार करने का प्रबंध करना पड़ा। इसलिए धीरे-धीरे शिक्षा का प्रसार होने लगा। यह शिक्षा सीमित भी थी और गलत ढंग की भी, फिर भी उसने नए और सक्रिय विचारों की दिशा में दिमाग की खिड़कियाँ और दरवाज़े खोल दिए। धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा और आधुनिक चेतना का प्रसार हुआ।

© NCERT not to be republished

यूरोप के विचारों से बहुत सीमित वर्ग प्रभावित हुआ क्योंकि भारत अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि को पश्चिम की तुलना में बेहतर समझते हुए उससे चिपका रहा। पश्चिम का वास्तविक आघात और प्रभाव तो जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर हुआ। नयी तकनीक, रेलगाड़ी, छापाखाना, दूसरी मशीनें, युद्ध के अधिक कारगर तरीके – यह सब ऐसी बातें थीं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। सबसे प्रकट और व्यापक परिवर्तन यह हुआ कि खेतिहर व्यवस्था टूट गई और उसका स्थान वैयक्तिक संपत्ति और ज़मींदारी ने ले लिया। मुद्रा-केंद्रित अर्थव्यवस्था का चलन हुआ और ज़मीन बिकाऊ वस्तु हो गई।

देश के किसी और बड़े हिस्से की अपेक्षा बंगाल ने बहुत पहले इन परिवर्तनों को देखा और अनुभव किया, क्योंकि बंगाल में ब्रिटिश शासन पचास वर्ष पहले स्थापित हो चुका था।

अट्ठारहवीं शताब्दी में बंगाल में एक अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व का उदय हुआ। ये थे राजा राममोहन राय। वे एक नए ढंग के व्यक्ति थे जिनमें प्राचीन और नवीन ज्ञान का मेल था। भारतीय विचारधारा और दर्शन की उन्हें गहरी जानकारी थी। वे संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के विद्वान थे और उस हिंदू-मुस्लिम संस्कृति की उपज थे जो उस समय भारत के सुसंस्कृत वर्ग के लोगों पर छाई हुई थी। उन्होंने अंग्रेज़ी और पश्चिम के धर्म और संस्कृत के स्रोतों की खोज के लिए ग्रीक, लातीनी और इब्रानी भाषाएँ सीखीं। पश्चिमी सभ्यता के विज्ञान और तकनीकी पक्षों ने भी उन्हें आकर्षित किया। अपने दार्शनिक और विद्वत्तापूर्ण झुकाव के कारण राममोहन राय अनिवार्य रूप से प्राचीन साहित्यों की ओर झुके। तुलनात्मक धर्म के अध्ययन की पद्धति की खोज करने वाले दुनिया के वे पहले उत्साही व्यक्ति थे और शिक्षा को आधुनिक साँचे में ढालकर उसे पुरानी पंडिताऊ पद्धति के चंगुल से निकालने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्होंने गवर्नर जनरल को गणित, भौतिक-विज्ञान, रसायनशास्त्र, जीव-विज्ञान और अन्य उपयोगी विज्ञानों की शिक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए लिखा था।

इन सबसे अधिक वे समाज सुधारक थे। आरंभ में उन पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा और बाद में कुछ हद तक ईसाई मत का, लेकिन वे अपने धार्मिक आधार पर दृढ़ता से जमे रहे। परंतु उन्होंने इस धर्म को उन कुरीतियों और कुप्रथाओं से मुक्त करने का प्रयास किया जो उसके साथ संबद्ध हो

2018-19

गयी थीं। ब्रिटिश सरकार ने सती प्रथा पर रोक उन्हीं के आंदोलन के कारण लगाई थी।

राममोहन राय भारतीय पत्रकारिता के प्रवर्तकों में से थे। सन् 1780 के बाद भारत में अंग्रेज़ों ने कई अखबार निकाले। इन अखबारों में आमतौर पर सरकार की कड़ी आलोचना रहती थी। परिणामत: उन पर कड़ा सेंसर लगता था। पहला अखबार जिस पर भारतीयों का स्वामित्व था और जिसका संपादन भी भारतीयों ने किया था 1818 में अंग्रेज़ी में निकला था। उसी वर्ष श्रीरामपुर के बैपटिस्ट पादरियों ने बंगाली में एक मासिक और एक साप्ताहिक पत्र निकाला। किसी भारतीय भाषा में प्रकाशित होने वाले ये पहले पत्र थे। इसके बाद एक के बाद एक अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं में कलकत्ता (कोलकाता), मद्रास (चेन्नई) और बंबई (मुंबई) से अखबार और पत्रिकाएँ बड़ी तेज़ी से निकलने लगीं।

राममोहन राय की पत्रकारिता का गहरा संबंध उनके सुधारवादी आंदोलनों से था। उनका समन्वयवादी और विश्वजनीन दृष्टिकोण कट्टर वर्ग के लोगों को नापसंद था और वे उनके बहुत से सुधारों का भी विरोध करते थे। पर उनके बहुत से समर्थकों में टैगोर परिवार था जिसने बाद में बंगाल के पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राममोहन राय दिल्ली-सम्राट की ओर से इंग्लैंड गए और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में ब्रिस्टल में उनकी मृत्यु हो गई।

सन् 1857 की महान क्रांति – जातीयतावाद

ब्रिटिश शासन के लगभग एक शताब्दी के उपरांत, बंगाल ने उससे समझौता कर लिया था। अकाल से नष्ट हुए किसान, नए आर्थिक बोझों के तले पिस रहे थे। नया बुद्धिजीवी वर्ग पश्चिम की ओर इस आशा से देख रहा था कि अंग्रेज़ी उदारता के सहारे से ही प्रगति होगी। लगभग यही स्थिति दक्षिण और पश्चिमी भारत में मद्रास और मुंबई में थी। लेकिन उत्तरी सूबों में ऐसा कोई झुकाव और समझौते की प्रवृत्ति नहीं थी। विशेष रूप से सामंत सरदारों और उनके अनुयायियों में विद्रोह की चेतना बढ़ रही थी। सामान्य जनता में भी असंतोष और तीव्र ब्रिटिश-विरोधी भावना खूब फैली थी।

2018-19

मई सन् 1857 में मेरठ की भारतीय सेना ने बगावत कर दी। विद्रोह की योजना खुफ़िया ढंग से बहुत अच्छी तरह बनाई थी लेकिन नियत समय से पहले हुए विस्फोट ने नेताओं की योजना ही बिगाड़ दी। यह केवल सैनिक विद्रोह से कहीं अधिक था। इसका बड़ी तेज़ी से प्रसार हुआ और इसने जनांदोलन और भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई का रूप ले लिया। जनांदोलन के रूप में यह दिल्ली, संयुक्त प्रांत (जैसा उन्हें आजकल कहा जाता है) मध्य भारत के कुछ भागों और बिहार तक सीमित था। मूलतः यह सामंतीय विस्फोट था, जिसका नेतृत्व सामंत सरदार और उनके अनुयायी कर रहे थे। व्यापक रूप से फैली विदेशी-विरोधी भावना से इसे बल मिल रहा था। इनके लिए मुगल राजवंश के उस अवशेष की ओर देखना अनिवार्य हो गया जो अब भी दिल्ली के राजमहल में बैठा था, लेकिन दुर्बल, बूढ़ा और अशक्त हो गया था। हिंदू और मुसलमान दोनों ने विद्रोह में पूरी तरह हिस्सा लिया।

बहादुरशाह ज़फ़र

इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन पर पूरा दबाव डाला और अंततः इसका दमन भारतीय सहायता से किया गया। सामंत सरदारों के साथ व्यापक क्षेत्रों में आम जनता की सहानुभूति थी, लेकिन वे अयोग्य, असंगठित थे और उनके सामने कोई रचनात्मक आदर्श और सार्वजनिक हित नहीं था।

इस विद्रोह से कुछ श्रेष्ठ छापामार नेता उभर कर आए। इनमें सबसे तेजस्वी थे तांत्या टोपे जिन्होंने कई महीनों तक अंग्रेज़ों को परेशान किया। आखिर में जब उन्होंने नर्मदा नदी को पार करके मराठा क्षेत्र में इस आशा से प्रवेश किया कि उनके अपने लोग उनकी सहायता और स्वागत करेंगे, तो उनके साथ धोखा हुआ। इन सबके अलावा एक और विशिष्ट नाम जिसे आज भी आम जनता श्रद्धापूर्वक स्मरण करती है झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का है,

जो बीस वर्ष की आयु में लड़ते-लड़ते मारी गई। जिस अंग्रेज़ जनरल ने उसका मुकाबला किया उसी ने उसके बारे में कहा था कि वह विद्रोही नेताओं में 'सर्वोत्तम और सबसे बहादुर' थी।

विद्रोह और उसके दमन के बारे में बहुत झूठा और भ्रष्ट इतिहास लिखा गया है। भारतीय उसके बारे में क्या सोचते हैं, यह बात शायद ही किताब के पृष्ठों तक छप कर पहुँच पाई। सावरकर ने लगभग तीस वर्ष पहले *द हिस्ट्री ऑफ़ द वॉर ऑफ़ इंडिपेंडेंस* शीर्षक पुस्तक लिखी, लेकिन उनकी पुस्तक तत्काल ज़ब्त कर ली गई और अब भी ज़ब्त है।

इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन को झकझोर कर रख दिया। सरकार ने अपने प्रशासन का पुनर्गठन किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 'ईस्ट इंडिया कंपनी' से देश को अपने हाथ में ले लिया। जिस भारतीय सेना ने अपनी बगावत से विद्रोह की शुरुआत की थी वह नए सिरे से संगठित हुई।

हिंदुओं और मुसलमानों में सुधारवादी और दूसरे आंदोलन

तकनीकी परिवर्तनों और उनके परिणामों के द्वारा भारत से पश्चिम की वास्तविक टकराहट उन्नीसवीं शताब्दी में हुई थी। विचारों के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ। पहली प्रतिक्रिया अल्पसंख्यक अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे वर्ग तक सीमित थी और उसमें लगभग हर पश्चिमी चीज़ के प्रति प्रशंसा का भाव था। हिंदू धर्म के कुछ सामाजिक रीति-रिवाजों से खिन्न होकर, बहुत से हिंदू ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए और बंगाल में कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों ने भी धर्म-परिवर्तन कर लिया। राजा राममोहन राय ने हिंदू 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना समाज-सुधारवादी आधार पर की। उनके बाद केशवचंद्र ने उसे लगभग ईसाई रूप दे दिया। बंगाल के उभरते हुए मध्य वर्ग पर ब्रह्म समाज का प्रभाव पड़ा लेकिन धार्मिक आस्था के रूप में वह बहुत कम लोगों तक सीमित रहा।

भारत में अन्य स्थानों पर भी ऐसी ही प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं और हिंदू धर्म के कठोर सामाजिक ढाँचे के विरुद्ध असंतोष उभर रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक अत्यंत

2018-19

महत्त्वपूर्ण सुधार-आंदोलन की शुरुआत की लेकिन उसकी जड़ पंजाब के हिंदुओं में जमी। यह आर्य समाज का आंदोलन था और नारा था 'वेदों की ओर लौटो।' इस नारे का वास्तविक अर्थ था वेदों के समय से आर्य-धर्म में होने वाले विकास का निषेध। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इसका प्रसार मुख्य रूप से पंजाब और संयुक्त प्रदेश के हिंदू मध्य वर्ग में हुआ। एक समय ऐसा आया जब सरकार इसे राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिकारी आंदोलन समझती थी। लड़के-लड़कियों में समान रूप से शिक्षा के प्रसार में, स्त्रियों की स्थिति का सुधार करने में और दलित जातियों के स्तर को ऊँचा उठाने में इसने बहुत अच्छा काम किया।

लगभग स्वामी दयानंद के ही समय में बंगाल में एक दूसरे ढंग का व्यक्तित्व समाने आया और नए पढ़े-लिखे वर्ग के बहुत लोगों पर उसका प्रभाव पड़ा। वे श्रीरामकृष्ण परमहंस थे। वे सीधे-सादे, विद्वान नहीं पर धर्मप्राण व्यक्ति थे लेकिन समाज सुधार में उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी। वे सीधे चैतन्य और भारत के अन्य संतों की परंपरा में आते हैं। वे मुख्यत: धार्मिक थे पर साथ ही बहुत उदार थे। आत्मसाक्षात्कार की खोज में वे मुसलमान और ईसाई तत्वज्ञानियों तक से मिले। उनमें से कुछ लोग कुछ समय श्रीरामकृष्ण के साथ भी रहे। वे कलकत्ता के निकट दक्षिणेश्वर में बस गए और उनके असाधारण व्यक्तित्व और चरित्र की ओर धीरे-धीरे लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा। धार्मिक विश्वास की बुनियादी बातों पर बल देते हुए, उन्होंने हिंदू धर्म और दर्शन के विविध पक्षों को आपस में जोड़ा। उन्होंने दूसरे धर्मों को भी अपने क्षेत्र में ले लिया। वे हर तरह की सांप्रदायिकता के विरोधी थे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि सभी मार्ग सत्य की ओर जाते हैं। आधुनिक जीवन के संदर्भ में उन्हें समझना कठिन था। फिर भी वे भारत के बहुरंगी साँचे के अनुरूप थे। बहुत से लोग जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा उनकी जीवन-कथा से प्रभावित हुए। इस वर्ग में रोम्यां रोला थे, जिन्होंने उनकी और उनके मुख्य शिष्य विवेकानंद की जीवनी लिखी।

विवेकानंद ने अपने गुरु-भाइयों के सहयोग से रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसमें सांप्रदायिकता नहीं थी। विवेकानंद के पास अतीत का

2018-19

© NCERT not to be republished

आधार था और उन्हें भारत की विरासत पर गर्व था। फिर भी जीवन की समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण आधुनिक था और वे भारत के अतीत और वर्तमान के बीच एक तरह के सेतु थे। वे बंगला और अंग्रेज़ी के ओजस्वी वक्ता थे और बंगला गद्य और ललित कविता के लेखक थे। वे सुंदर व्यक्तित्व के धनी थे–रोबीले, शालीन और गरिमावान। उन्हें अपने और अपने मिशन पर भरोसा था। उनमें भारत को आगे बढ़ाने की गहरी लगन थी। उदास और पतित हिंदू मानस के लिए वे संजीवनी की तरह आए। 1893 ई. में उन्होंने शिकागो में अंतरराष्ट्रीय धर्म-सम्मेलन में भाग लिया। अमरीका में एक वर्ष से अधिक बिताया, यूरोप की यात्रा एथेंस और कुस्तुंतुनिया तक की और मिस्र, चीन और जापान भी गए। जो एक बार इस हिंदू संन्यासी को देख लेता था, उसके लिए उसे और उसके संदेश को भूलना कठिन हो जाता था। खुद उन पर भी पश्चिमी देशों की यात्रा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, वे अंग्रेज़ों की लगन और अमरीकी लोगों की जीवंतता और समभाव के प्रशंसक थे। लेकिन वे पश्चिम के धर्म व्यवहार से प्रभावित नहीं हुए और भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में उनकी आस्था और बलवती हो गई।

उन्होंने वेदांत के अद्वैत-दर्शन के एकेश्वरवाद का उपदेश दिया। उन्हें विश्वास था कि विचारशील मानवता के भविष्य के लिए यही एकमात्र धर्म हो सकता है। उनके अनुसार वर्ण-व्यवस्था एक तरह की सामाजिक व्यवस्था है जो धर्म से अलग थी और अलग ही रहनी चाहिए। सामाजिक संगठनों को समय के परिवर्तन के साथ बदलना चाहिए। विवेकानंद ने कर्म-कांड के निरर्थक तात्विक-विवेचनों और तर्कों की घोर निंदा की–विशेषकर ऊँची जाति की छुआछूत की।

विवेकानंद ने बहुत-सी बातें कहीं लेकिन जिस एक बात के बारे में उन्होंने अपने लेखन और भाषणों में बराबर लिखा, वह थी 'अभय'–निडर रहो। उनके अनुसार "अगर दुनिया में कोई पाप है तो वह दुर्बलता है–हर तरह की दुर्बलता से बचो, दुर्बलता पाप है, दुर्बलता मृत्यु है। उपनिषदों की यही महान शिक्षा थी।" और सत्य की कसौटी है – "कोई भी चीज़ जो तुम्हें शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से कमज़ोर बनाती है, उसे ज़हर की तरह छोड़ दो, उसमें कोई जीवन नहीं है वह सत्य नहीं हो सकती। सत्य

© NCERT not to be republished

मज़बूत बनाता है, सत्य पवित्रता है, सर्वज्ञान है।" "अंधविश्वासों से सावधान रहो। मैं तुम्हें अंधविश्वासी मूर्ख कहने की अपेक्षा कट्टर नास्तिक कहना पसंद करूँगा, क्योंकि नास्तिक सजीव होता है और आप उसे कुछ बना सकते हैं। लेकिन अगर अंधविश्वास घर कर ले तो दिमाग गायब हो जाता है, बुद्धि क्षीण होने लगती है, जीवन का पतन होने लगता है ..."

इसलिए विवेकानंद ने भारत के दक्षिणी छोर में कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक गर्जना की। इस प्रक्रिया में उन्होंने अपने आपको खपा दिया। सन् 1902 में उनतालीस वर्ष की आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई।

विवेकानंद के ही समकालीन थे रवींद्रनाथ टैगोर। किंतु वे बाद की पीढ़ी के थे। टैगोर परिवार ने उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान बंगाल के विभिन्न सुधारवादी आंदोलनों में आगे बढ़कर भाग लिया था। उस परिवार में आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचे लोग थे, श्रेष्ठ लेखक और कलाकार थे, पर रवींद्रनाथ का स्थान इन सबसे ऊँचा था और पूरे भारत में क्रमशः उनकी स्थिति ऐसी हो गई कि कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। वे राजनीतिज्ञ नहीं थे किंतु वे इतने संवदेनशील और भारतीय जनता की स्वाधीनता के प्रति इतने समर्पित थे कि जब भी कोई बात उनसे बर्दाश्त नहीं होती थी, वे बाहर निकलते थे और ब्रिटिश सरकार या अपने लोगों को चेतावनी देते थे। बीसवीं सदी के पहले दशक में बंगाल में व्याप्त स्वदेशी आंदोलन में उन्होंने भाग लिया और अमृतसर के हत्याकांड के समय उन्होंने 'सर' का खिताब लौटा दिया। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो रचनात्मक कार्य खामोशी से आरंभ किया था, उसने 'शांति निकेतन' को भारतीय संस्कृति का प्रधान केंद्र बना दिया। भारतीय मानस पर उनका प्रभाव, विशेषकर एक के बाद एक आने वाली नयी पीढ़ियों पर बेहद रहा। वे भारत के सर्वोत्तम अंतरराष्ट्रीयतावादी थे। अंतरराष्ट्रीय सहयोग में विश्वास और उसके लिए काम करने के कारण, वे भारत के संदेश को दूसरे देशों में ले जाते रहे और उनके संदेश अपने लोगों के लिए लाते रहे। फिर भी उनके पैर दृढ़तापूर्वक भारत की धरती पर जमे हुए थे और उनका मस्तिष्क उपनिषदों के ज्ञान से ओत-प्रोत था। घोर व्यक्तिवादी होने के बावजूद वे रूसी क्रांति की महान उपलब्धियों के प्रशंसक थे, विशेषकर शिक्षा के प्रसार, संस्कृति, स्वास्थ्य और समानता की चेतना के। टैगोर ने भारत की उसी तरह बहुत अधिक सेवा की जैसे कि एक दूसरे स्तर पर गांधी

2018-19

© NCERT not to be republished

ने की थी। अर्थात् उन्होंने लोगों को एक सीमा तक इस बात के लिए विवश किया कि वे अपने विचारों के संकीर्ण घेरे से बाहर निकलकर मानवता को प्रभावित करने वाले व्यापक प्रश्न पर ध्यान दें। टैगोर भारत के सबसे बड़े मानवतावादी थे।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में टैगोर और गांधी निस्संदेह भारत के दो विशिष्ट और प्रभावशाली व्यक्तित्व थे। उनकी समानताओं और विषमताओं की तुलना से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। कोई दो व्यक्ति अपनी बनावट और मिज़ाज में एक-दूसरे से इतने भिन्न नहीं हो सकते। टैगोर संभ्रांत कलाकार थे, जो सर्वहारा के प्रति सहानुभूति के कारण लोकतंत्रवादी हो गए थे। गांधी, जो विशेष रूप से जनता के आदमी थे, भारतीय किसान का साकार रूप थे और भारत की दूसरी प्राचीन परंपरा का प्रतिनिधित्व करते थे। यह परंपरा संन्यास और त्याग की परंपरा थी। टैगोर मूलत: विचारक थे और गांधी अनवरत कर्मठता के प्रतीक थे। दोनों की, अपने-अपने ढंग की विश्वदृष्टि थी और इसके साथ ही दोनों पूरी तरह भारतीय थे। वे दोनों भारत के अलग-अलग पक्षों का प्रतिनिधित्व करते थे जो एक-दूसरे के पूरक थे।

गांधी और टैगोर

अपनी आध्यात्मिक और राष्ट्रीय विरासत में हिंदू मध्य वर्ग की आस्था को बढ़ाने में श्रीमती ऐनी बेसेंट का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। इस सब में एक आध्यात्मिक और धार्मिक तत्व था, लेकिन साथ ही उसके पीछे सुदृढ़ राजनीतिक पृष्ठभूमि भी थी। उदीयमान मध्य वर्ग का झुकाव राजनीतिक था और वह किसी धर्म की तलाश में नहीं था। उसे पकड़ने के लिए सांस्कृतिक आधार चाहिए था। कुछ ऐसा जो उनमें आत्मविश्वास पैदा करता और उस नैराश्य

और अपमान के बोध को कम करता, जो उनके भीतर विदेशी जीत और शासन ने पैदा कर दिया था। हर देश में राष्ट्रीयता के विकास के साथ धर्म के अलावा यह तलाश, अपने अतीत की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। भारत का अतीत अपनी संपूर्ण सांस्कृतिक विविधता और महानता के साथ सब भारतीयों की साझी विरासत है—हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों तथा अन्य लोगों की भी और उन्हीं के पूर्वजों ने इसके निर्माण में सहयोग दिया था। बाद में दूसरे मतों में धर्म-परिवर्तन कर लेने के कारण, वे इस विरासत से वंचित नहीं हो जाते।

प्राचीन दर्शन और साहित्य, कला और इतिहास ने कुछ सांत्वना दी। राममोहन राय, दयानंद, विवेकानंद और अन्य लोगों ने नए विचारधारात्मक आंदोलन चलाए। एक ओर उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य की समृद्ध साहित्य धारा से रसपान किया वहीं दूसरी ओर उनका मानस भारत के प्राचीन मनीषियों और शूरवीरों के विचारों और कार्यों से और उन पुरागाथाओं और परंपराओं से भरा था जिन्हें उन्होंने अपने बचपन से आत्मसात किया था।

इसमें से बहुत-सी बातें मुसलमान जनता में भी समान रूप से प्रचलित थीं। वे लोग परंपराओं से भलीभाँति परिचित थे। लेकिन धीरे-धीरे, विशेष रूप से उच्च वर्ग के मुसलमानों के द्वारा यह महसूस किया जाने लगा कि उनके लिए इन अर्द्ध-धार्मिक परंपराओं से जुड़ना बहुत मुनासिब नहीं होगा। इन परंपराओं को बढ़ावा देना इस्लाम की भावना के विरुद्ध होगा। उन्होंने अपनी कौमी बुनियाद दूसरी जगह तलाश की। कुछ हद तक उन्होंने उसे भारत के अफ़गान और मुगल युग में पाया, लेकिन उससे खाली जगह पूरी तरह नहीं भर पाई।

गदर के बाद भारत के मुसलमान इस असमंजस में थे कि वे किस ओर मुड़ें। ब्रिटिश सरकार ने जानबूझकर हिंदुओं की तुलना में उनका दमन कहीं अधिक किया और इस दमन का प्रभाव विशेष रूप से उन मुसलमानों पर पड़ा जिनसे नया मध्य वर्ग या बुर्जुआ वर्ग पैदा होता है। सन् 1870 के बाद उनके प्रति ब्रिटिश नीति में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ और वह उनके अधिक अनुकूल हो गई। इस परिवर्तन का विशेष कारण ब्रिटिश सरकार की संतुलन की नीति थी। फिर भी, इस प्रक्रिया में सर सैयद अहमद खाँ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्हें इस बात का भरोसा था कि वे ब्रिटिश सत्ता से सहयोग करके ही मुसलमानों को ऊपर उठा सकते हैं। वे इस बात के लिए बहुत

2018-19
© NCERT not to be republished

उत्सुक थे कि ये लोग अंग्रेज़ी शिक्षा को स्वीकार कर लें। उन्होंने यूरोपीय सभ्यता को जिस रूप में देखा था, उसका उन पर गहरा प्रभाव था। वास्तव में यूरोप से लिखे उनके कुछ पत्रों से ज़ाहिर होता है कि वे इतने चकाचौंध थे कि उनका संतुलन डगमगा-सा गया था।

सर सैयद उत्साही सुधारक थे और वे आधुनिक वैज्ञानिक विचारों के साथ इस्लाम का मेल बैठाना चाहते थे। वे नए ढंग की शिक्षा को बढ़ावा देना चाहते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ से वे भयभीत हुए, क्योंकि उनका विचार था कि ब्रिटिश अधिकारियों का किसी भी तरह का विरोध करने के कारण उन्हें अपने शैक्षिक कार्यक्रम में उनकी सहायता नहीं मिलेगी। उन्हें यह सहायता ज़रूरी मालूम होती थी, इसलिए उन्होंने मुसलमानों में ब्रिटिश विरोधी भावना को कम करने की कोशिश की और उन्हें नेशनल कांग्रेस से, जो उस समय आकार ले रही थी, हटाने की कोशिश की। उन्होंने जिस अलीगढ़ कॉलेज की स्थापना की, उसका एक घोषित उद्देश्य था, 'भारत के मुसलमानों को ब्रिटिश ताज की योग्य और उपयोगी प्रजा बनाना।' वे नेशनल कांग्रेस का विरोध इसलिए नहीं करते थे कि वे उसे विशेष रूप से हिंदू संगठन समझते थे, उन्होंने उसका विरोध इसलिए किया क्योंकि वे अंग्रज़ों की सहायता और सहयोग चाहते थे। उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की कि कुल मिलाकर मुसलमानों ने गदर में हिस्सा नहीं लिया और वे ब्रिटिश सत्ता के प्रति वफ़ादार रहे। वे किसी रूप में हिंदू विरोधी या सांप्रदायिक दृष्टि से अलगाववादी नहीं थे। उन्होंने कहा – याद रखो 'हिंदू' और 'मुसलमान' ये शब्द सिर्फ़ धार्मिक अंतर बताने के लिए हैं – वरना सब लोग, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, यहाँ तक कि ईसाई भी, जो इस देश में रहते हैं, इस दृष्टि से सब एक ही राष्ट्र के लोग हैं।

सर सैयद अहमद खाँ का प्रभाव मुसलमानों में उच्च वर्ग के कुछ लोगों तक ही सीमित था, उन्होंने शहरी या देहाती आम जनता से संपर्क नहीं किया। सर सैयद के कई योग्य और उल्लेखनीय सहयोगी थे। सर सैयद अहमद अपने प्रयत्न में इतनी दूर तक सफल हुए कि मुसलमानों में अंग्रेज़ी शिक्षा आरंभ हो गई और उनका दिमाग राजनीतिक आंदोलन से हट गया। एक मुस्लिम एजुकेशनल कांफ्रेंस शुरू की गई और उसने नौकरियों और दूसरे पेशों में उभरते हुए मध्य वर्ग के मुसलमानों को आकर्षित किया।

2018-19

यह बात ध्यान देने की है कि गदर के बाद के समय में भारतीय मुसलमानों में जितने विशिष्ट लोग थे, जिनमें सर सैयद भी शमिल हैं, सभी ने पुरानी परंपरागत शिक्षा पाई थी, हाँ उनमें से कुछ लोगों ने बाद में अंग्रेज़ी का ज्ञान हासिल कर लिया। नयी पश्चिमी शिक्षा ने तब भी उनके बीच कोई उल्लेखनीय व्यक्तित्व पैदा नहीं किया।

वर्ष 1912 भारत में मुस्लिम दिमाग के विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उस साल दो नए साप्ताहिक निकलने शुरू हुए – उर्दू में *अल-हिलाल* और अंग्रेज़ी में द *कॉमरेड*। *अल-हिलाल* का आरंभ अबुल कलाम आज़ाद (कांग्रेस के वर्तमान सभापति) ने किया। ये चौबीस वर्ष के प्रतिभाशाली नवयुवक थे जो पंद्रह से बीस वर्ष की आयु में ही अपने अरबी और फ़ारसी के ज्ञान और गहन अध्ययन के लिए प्रसिद्ध हो गए थे। इसके साथ उन्होंने बाहर की इस्लामी दुनिया के बारे में जानकारी हासिल की और उन सुधारवादी आंदोलनों के बारे में भी जो वहाँ चल रहे थे। उन्होंने धर्म-ग्रंथों की व्याख्या बुद्धिवादी दृष्टिकोण से की। वे इस्लामी देशों में किसी भी अन्य भारतीय मुसलमान की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हुए।

उनका दृष्टिकोण अधिक उदार और तर्कसंगत था। इस कारण वे पुराने नेताओं के सामंती, संकीर्ण धार्मिकता और अलगाववादी दृष्टिकोण से दूर थे। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण वे अनिवार्य रूप से भारतीय राष्ट्रवादी थे।

आज़ाद की शैली में उत्तेजना और तेजस्विता थी, गोकि कभी-कभी वह फ़ारसी पृष्ठभूमि के कारण कुछ कठिन प्रतीत होती थी। नए विचारों के लिए उन्होंने नयी शब्दावली का प्रयोग किया और उर्दू भाषा जैसी आज है, उसे यह रूप देने में उनका निश्चित योगदान था। उनमें मध्ययुगीन पंडिताऊपन, अट्ठारहवीं शताब्दी की तार्किकता और आधुनिक दृष्टिकोण का विचित्र मेल था।

अलीगढ़ कॉलेज में सर सैयद खाँ से उनका संबंध रहा था। लेकिन अलीगढ़ कॉलेज की परंपरा अलग थी और राजनीतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से वे रूढ़िवादी थी। अपने विद्यार्थियों के सामने वे जो मुख्य लक्ष्य रखते थे, वह था निचले दर्जे की सरकारी नौकरी में प्रवेश करना। इसके लिए सरकार-समर्थक रवैया अनिवार्य था और राष्ट्रवाद और विद्रोह के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। अलीगढ़ कॉलेज का समुदाय अब नए मुसलमान बुद्धिजीवियों

2018-19

का नेतृत्व कर रहा था और कभी-कभी प्रकट रूप से, पर अधिकतर परदे के पीछे से लगभग हर मुस्लिम आंदोलन को प्रभावित करता था। मुस्लिम लीग की स्थापना मुख्य रूप से इन्हीं लोगों के प्रयास से हुई।

अबुल कलाम आज़ाद ने इस पुरातनपंथी और राष्ट्रविरोधी भावना के गढ़ पर हमला किया। यह काम उन्होंने ऐसे विचारों के प्रसार से किया जिन्होंने अलीगढ़ परंपरा की जड़ ही खोद दी। इस युवा लेखक और पत्रकार ने मुस्लिम बुद्धिजीवी समुदाय में सनसनी पैदा की, यद्यपि बुज़ुर्गों ने उन पर भौहें चढ़ाईं पर युवा पीढ़ी के दिमाग में उनके शब्दों ने उत्तेजना पैदा कर दी।

तिलक और गोखले

नेशनल कांग्रेस, जिसकी स्थापना सन् 1885 में हुई थी, जब प्रौढ़ हुई तो एक नए ढंग का नेतृत्व सामने आया। ये लोग अधिक आक्रामक और अवज्ञाकारी थे और बड़ी संख्या में निम्न मध्यवर्ग, विद्यार्थी और युवा लोगों के प्रतिनिधि थे। बंगाल-विभाजन के विरोध में जो शक्तिशाली आंदोलन हुआ था, उसमें इस प्रकार के कई योग्य और ओजस्वी नेता उभरकर आए। लेकिन इसके सच्चे प्रतीक, महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक थे। पुराने नेतृत्व के प्रतिनिधि भी कम उम्र के मराठा सज्जन गोपाल कृष्ण गोखले थे। क्रांतिकारी नारे हवा में गूँज रहे थे और संघर्ष अनिवार्य था। इस संघर्ष को बचाने के लिए कांग्रेस के बुज़ुर्ग नेता दादा भाई नौरोजी, जिन्हें राष्ट्रपिता समझा जाता था, अपने अवकाश प्राप्त जीवन से वापस लाए गए। बचाव थोड़े ही दिन के लिए हुआ और 1907 में संघर्ष फिर हुआ जिसमें पुराने उदार दल की जीत हुई। पर इसमें संदेह नहीं कि राजनीतिक दृष्टि से सजग भारत की बहुसंख्यक जनता तिलक और उनके समुदाय के पक्ष में थी। कांग्रेस का महत्त्व काफ़ी कुछ घट गया था और बंगाल में हिंसक गतिविधियाँ सामने आ रही थीं।

2018-19

अध्याय 7

अंतिम दौर – दो

राष्ट्रीयता बनाम साम्राज्यवाद

मध्य वर्ग की बेबसी – गांधी का आगमन

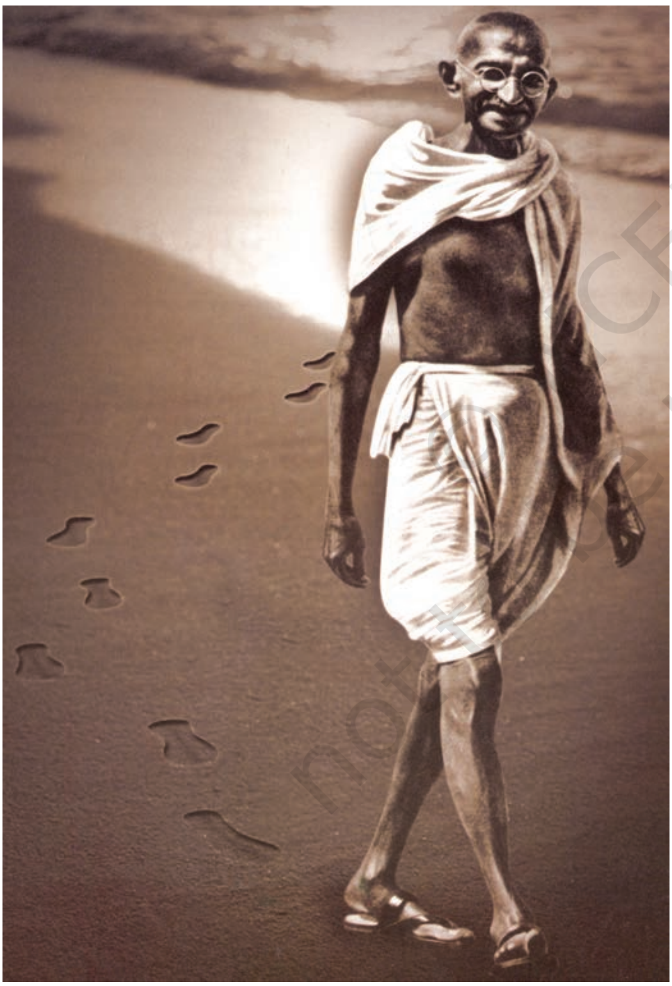

महात्मा गांधी

पहला विश्व युद्ध आरंभ हुआ। राजनीति उतार पर थी। इसका कारण था कांग्रेस का तथाकथित गरम दल और नरम दल में विभाजन और युद्ध-काल में लागू किए गए नियम और प्रतिबंध।

अंततः विश्व युद्ध समाप्त हुआ और शांति के परिणामस्वरूप देश में राहत और प्रगति की बजाय दमनकारी कानून और पंजाब में मार्शल लॉ लागू हुआ। जनता में अपमान की कड़वाहट और क्रोध का आवेश भर गया। ऐसे समय में जब हमारे देश के पौरुष को लगातार कुचला जा रहा था; शोषण की लगातार निर्मम प्रक्रिया से हमारी गरीबी बढ़ रही थी और हमारी जीवन शक्ति क्षीण हो रही थी। किसान वर्ग दब्बू और भयभीत था, कारखाने के मज़दूरों की स्थिति

© NCERT not to be republished

भी बेहतर नहीं थी। मध्य वर्ग और बुद्धिजीवी लोग, जो इस सर्वग्रासी अंधकार में आकाशदीप हो सकते थे, खुद इस सर्वव्यापी उदासी में डूबे हुए थे।

और तब गांधी का आगमन हुआ। वे ताज़ा हवा के ऐसे झोंके की तरह आए जिसने फैलकर हमें गहरी साँस लेने के योग्य बनाया। वे ऊपर से अवतरित नहीं हुए थे, वे भारत की करोड़ों की आबादी के बीच से ही निकलकर आए थे। वे उन्हीं की भाषा बोलते थे और लगातार उनकी शोचनीय स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करते थे। उन्होंने हमसे कहा कि इन मज़दूरों और किसानों की पीठ से उतर जाओ, तुम सब जो उनके शोषण के सहारे ज़िंदा हो उस व्यवस्था को समाप्त कर दो जो इस गरीबी और दुर्गति की जड़ है। उन्होंने जो कुछ कहा हमने उनमें से ज़्यादातर बातों को आंशिक रूप में माना और कभी-कभी बिलकुल नहीं माना। लेकिन यह एक गौण बात थी। उनकी शिक्षा का सार था – निर्भयता और सत्य और इनसे जुड़ा हुआ कर्म। वे हमेशा सामान्य जनता की खुशहाली पर नज़र रखते थे। लेकिन ब्रिटिश शासन के अधीन सबसे प्रबल एहसास था 'भय'–व्यापक दमनकारी, दमघोंटू भय – सेना का, पुलिस का, दूर-दूर तक फैले हुए खुफ़िया विभाग का भय, अफ़सरों व ज़मींदार के कारिंदों का भय, साहूकार का भय, बेकारी और भुखमरी का भय, जो हमेशा करीब खड़ा रहता था। चारों तरफ़ फैले इस डर के खिलाफ़ ही गांधी की शांत किंतु दृढ़ आवाज़ उठी "डरो मत।"

इस तरह लोगों के ऊपर से भय का काला लबादा उठ गया, पूरी तरह तो नहीं पर आश्चर्यजनक मात्रा में। क्योंकि भय का झूठ से नज़दीक का संबंध होता है। जैसे-जैसे झूठ और लुक-छिपकर काम करने की ज़रूरत कम होती गई वैसे-वैसे एक व्यापक परिवर्तन दिखाई देने लगा। यह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन था।

गांधी ने भारत में करोड़ों लोगों को अलग-अलग मात्रा में प्रभावित किया। कुछ लोगों ने अपने जीवन की पूरी बनावट को ही बदल लिया, कुछ पर आंशिक प्रभाव पड़ा, या फिर प्रभाव मिट गया, पर पूरी तरह नहीं। अलग-अलग लोगों में प्रतिक्रियाएँ भी अलग-अलग हुई और हर आदमी के पास इस सवाल का अलग-अलग जवाब था।

2018-19

गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस सक्रिय

गांधी जी ने पहली बार कांग्रेस के संगठन में प्रवेश किया और तत्काल उसके संविधान में पूरी तरह परिवर्तन ला दिया। उन्होंने उसे लोकतांत्रिक और लोक संगठन बनाया। अब उसमें किसानों ने प्रवेश किया और अपने नए रूप में वह एक विशाल किसान-संगठन दिखाई देने लगा, जिसमें मध्य वर्ग के लोग संख्या में छितरे हुए थे लेकिन उनका ज़ोर काफ़ी था। अब उसका खेतिहर चरित्र बढ़ने लगा। औद्योगिक मज़दूर भी उसमें आए लेकिन अपनी व्यक्तिगत हैसियत में, अलग से संगठित रूप में नहीं।

इस संगठन का लक्ष्य और आधार था सक्रियता। ऐसी सक्रियता जिसका आधार शांतिपूर्ण पद्धति थी। अब तक जो विकल्प थे उसमें या तो केवल बातचीत करना और प्रस्ताव पारित करना था अथवा हिंसक कार्यवाही करना। इन दोनों तरीकों को एक तरफ़ हटा दिया और हिंसा की विशेष रूप से निंदा की गई क्योंकि वह कांग्रेस की मूल नीति के खिलाफ़ था। काम करने का एक नया तरीका निकाला गया, जो पूरी तरह शांतिपूर्ण था। लेकिन जिस बात को गलत समझा जाता था उसके आगे सिर झुकाना मंजूर नहीं किया गया। परिणामस्वरूप इस प्रक्रिया में होने वाली जो पीड़ा और कष्ट थे उन्हें खुशी से स्वीकार किया गया। गांधी जी विचित्र प्रकार के शांतिवादी थे, वे गतिशील ऊर्जा से भरे सक्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने न कभी भाग्य से हार मानी न ऐसी बात के सामने सिर झुकाया जिसे वे बुरा समझते थे। उनमें मुकाबला करने की भरपूर शक्ति थी गरचे वे ऐसा शांतिपूर्ण और शिष्ट ढंग से करते थे।

सक्रियता का आह्वान दोहरा था। ज़ाहिर है कि विदेशी शासन को चुनौती देने और उसका मुकाबला करने की सक्रियता तो थी ही, अपनी खुद की सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध लड़ने की सक्रियता भी थी। कांग्रेस के मुख्य आधार थे राष्ट्रीय एकता जिसमें अल्पसंख्यकों की समस्याओं को हल करना और दलित जातियों को ऊपर उठाने के साथ छुआछूत के अभिशाप को खत्म करना शामिल थे।

© NCERT not to be republished

गांधी जी ने अंग्रेज़ी शासन की बुनियादों पर चोट की। उन्होंने कहा कि खिताब छोड़ देने चाहिए। गरचे कम लोगों ने खिताब छोड़े, लेकिन अंग्रेज़ों द्वारा दिए गए इन खिताबों के लिए आम जनता में इज़्ज़त समाप्त हो गई और ये पतन के प्रतीक बन गए। नए मापदंड और मूल्य स्थापित हुए। वायसराय के दरबार और रजवाड़ों की शान-शौकत जो इतना अधिक प्रभावित करती थी, बेहद उपहासास्पद, अभद्र और शर्मनाक लगने लगी क्योंकि वह आम जनता की गरीबी और कष्टों से घिरी हुई थी। धनी लोगों ने भी कम-से-कम ऊपरी तौर पर, उनमें से बहुतों ने, सादा रहन-सहन अपना लिया। वेशभूषा में उनमें और मामूली लोगों में कोई अंतर नहीं रह गया।

कांग्रेस के पुराने नेता, जो एक अलग और ज़्यादा निष्क्रिय परंपरा में पले थे, इन नए तौर-तरीकों को आसानी से नहीं अपना सके और आम जनता की इस उठान से उन्हें परेशानी हुई। लेकिन जो हवा पूरे देश में बही, इन लोगों में भी उसका नशा कुछ दूर तक भर गया।

ऐसा कहा जाता है कि भारतीय मानस मूलतः निवृत्तिमार्गी है। पर गांधी जी इस निवृत्तिमार्ग के एकदम विपरीत थे। भारतीय जनता की निष्क्रियता के विरुद्ध संघर्ष करने और उसे बदलने के लिए जितना काम उन्होंने किया, किसी दूसरे ने नहीं किया।

उन्होंने हमें गाँवों की ओर भेजा और कर्म के इस नए संदेश को ले जाने वाले अनगिनत दूतों की गतिविधियों से देहात में चहल-पहल मच गई। किसानों को झकझोरा गया। हम लोगों पर प्रभाव दूसरे ढंग का था। हमने पहली बार ग्रामीण को उसकी कच्ची झोंपड़ी में भूख की उस छाया के साथ जो हमेशा उसका पीछा करती है, चिपटे देखा। हमने इन यात्राओं से भारतीय अर्थ-व्यवस्था के बारे में पुस्तकों और विद्वत्तापूर्ण भाषणों की तुलना में अधिक जाना। जो भावात्मक अनुभव हमें पहले हो चुके थे, उन्हें बल मिला।

आर्थिक, सामाजिक और दूसरे मामलों में गांधी जी के विचार बहुत सख्त थे। उन्होंने इन सबको कांग्रेस पर लादने की कोशिश नहीं की। इनमें से कुछ विचारों को उन्होंने कांग्रेस में पैठाने की कोशिश की। वे सावधानी से आगे बढ़े क्योंकि वे जनता को अपने साथ ले चलना चाहते थे। बहुत से

2018-19

लोगों ने उनके सभी विचारों को स्वीकार नहीं किया, कुछ लोगों का उनके बुनियादी दृष्टिकोण से मतभेद था। दो तरह से, उनके विचारों का अस्पष्ट किंतु पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हर बात की बुनियादी कसौटी यह थी कि उससे आम जनता का भला कहाँ तक होता है और दूसरे यह कि लक्ष्य भले ही सही हो, लेकिन साधन हमेशा महत्त्वपूर्ण होते हैं और उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

गांधी मूलतः धर्मप्राण व्यक्ति हैं। वे अपने अंतरतम की गहराइयों तक हिंदू हैं, लेकिन धर्म संबंधी उनकी अवधारणा का किसी सिद्धांत, परंपरा या कर्मकांड से कोई संबंध नहीं है। उनका बुनियादी सरोकार उन नैतिक नियमों में उनके दृढ़ विश्वास से है जिन्हें वे सत्य या प्रेम के नियम कहते हैं। सत्य और अहिंसा, इन दोनों शब्दों को वे एक ही अर्थ के लिए अदल-बदल कर इस्तेमाल करते हैं। उनका दावा है कि वे हिंदू धर्म की मूल भावना को समझते हैं। उन्होंने हर उस सिद्धांत और व्यवहार को नामंज़ूर किया जो उनकी आदर्शवादी व्याख्या से मेल नहीं खाता था। वे सबसे ऊपर नैतिक नियमों की सत्ता मानते हैं, वह भी उस रूप में जिस रूप में उन्होंने खुद उन्हें समझा है।

जीवन के अन्य पक्षों की ही तरह औसत आदमी के लिए इससे राजनीति में परेशानी और अक्सर गलतफ़हमी पैदा होती है। लेकिन कोई बाधा उन्हें अपनी पसंद के सीधे रास्ते से नहीं हटा पाती, क्योंकि एक सीमा के भीतर वे बराबर अपने को बदलती हुई स्थिति के अनुरूप ढालते चलते हैं। वे हमेशा खुद अपने से शुरुआत करते हैं। उनकी कथनी और करनी में इतना मेल होता है जितना हाथ और दस्ताने में।

जिस भारत को वे अपनी इच्छाओं और आदर्शों के अनुसार ढालने जा रहे थे उसके बारे में उनका विचार था – "मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें गरीब-से-गरीब व्यक्ति भी यह महसूस करेगा कि यह उसका देश है जिसके निर्माण में उसकी आवाज़ प्रभावी है। एक ऐसा भारत जिसमें लोगों के ऊँचे-नीचे वर्ग नहीं होंगे। ऐसा भारत जिसमें सब जातियाँ पूरे समभाव से रहेंगी...ऐसे भारत में छुआछूत या नशीली मदिरा और दवाइयों के अभिशाप के लिए कोई जगह नहीं होगी...स्त्रियों को पुरुषों के समान

2018-19

© NCERT not to be republished

अधिकार होंगे...यही मेरे सपनों का भारत है।" जहाँ उन्हें अपनी हिंदू विरासत का गर्व था, वहाँ उन्होंने हिंदू धर्म को एक सार्वभौमिक बाना पहनाने का प्रयत्न किया और सत्य के घेरे में सब धर्मों को शामिल कर लिया। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत को संकीर्ण बनाने से इंकार कर दिया।

उन्होंने लिखा–"भारतीय संस्कृति न हिंदू है न इस्लाम, न पूरी तरह से कुछ और है। यह सबका मिला-जुला रूप है।" उन्होंने आगे लिखा–"मैं चाहता हूँ कि मेरे घर के पास सारे देशों की संस्कृति जितनी स्वतंत्रता से संभव हो उतनी स्वतंत्रता से फैले। लेकिन उसमें से कोई मेरे पैर उखाड़ दे, मुझे यह मंज़ूर नहीं।" आधुनिक विचारधाराओं से प्रभावित होकर उन्होंने कभी अपनी जड़ों को नहीं छोड़ा और उन्हें मज़बूती से पकड़े रखा।

डूबे हुए लोगों को उठाने की लगन के सामने और सभी बातों की तरह धर्म का भी उनके लिए गौण स्थान था। "एक अधभूखे राष्ट्र का न कोई धर्म हो सकता है, न कला, न संगठन। करोड़ों भूखे मरते लोगों के लिए जो कुछ भी उपयोगी हो सकता है वही मेरे लिए सुंदर है। आज हम सबसे पहले ज़िंदगी की ज़रूरी चीज़ें दें और उसके बाद जीवन के लिए शोभा की वस्तुएँ और अलंकार अपने आप आ जाएँगे...।" उन्होंने कहा, "मेरी आकांक्षा है हर आँख से हर आँसू को पोंछ लेना।"

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इस अद्‌भुत रूप से तेजस्वी आदमी ने, जिसका पैमाना सबसे गरीब आदमी है, भारत की सामान्य जनता को सम्मोहित कर लिया और उन्हें चुंबक की तरह आकर्षित किया। वे उनको अतीत के साथ भविष्य को जोड़ने वाली कड़ी की तरह जान पड़े। उन्होंने केवल अपने अनुयायियों में ही नहीं, बल्कि अपने विरोधियों में भी और उन तमाम तटस्थ लोगों में जो इस बारे में निश्चय नहीं कर पाते थे कि क्या सोचना और क्या करना है, एक मनोवैज्ञानिक क्रांति पैदा की।

कांग्रेस पर गांधी जी का प्रभुत्व था, लेकिन यह खास किस्म का अधिकार था, क्योंकि कांग्रेस एक सक्रिय, विद्रोही, अनेक पक्षीय संगठन था जिसमें तरह-तरह की राय होती थी और उसे आसानी से इधर-उधर नहीं ले जाया जा सकता था। गांधी जी अक्सर दूसरों की इच्छा के सामने झुक जाते थे। कभी-कभी वे अपने विरुद्ध फैसलों को भी स्वीकार कर लेते थे।

2018-19

इस तरह सन् 1920 में नेशनल कांग्रेस ने और काफ़ी हद तक देश ने इस नए रास्ते को अपनाया और ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ बार-बार संघर्ष किया।

एक के बाद दूसरा सविनय अवज्ञा आंदोलन हुआ और उसके कारण बहुत कष्ट उठाने पड़े, लेकिन इन मुसीबतों को चूँकि खुद आमंत्रित किया गया था इसलिए उनसे शक्ति ही मिली।

जब सविनय अवज्ञा आंदोलन जारी नहीं था, तब भी भारत में ब्रिटिश सरकारी तंत्र से असहयोग जारी था, गरचे उसका आक्रामक चरित्र समाप्त हो गया था।

अल्पसंख्यकों की समस्या – मुस्लिम लीग – मोहम्मद अली जिन्ना

जिसे सांप्रदायिक समस्या कहा जाता था, वह अल्पसंख्यकों के अधिकारों के साथ इस तरह तालमेल बैठाना था ताकि उन्हें बहुसंख्यकों के खिलाफ़ पर्याप्त संरक्षण मिल सके। भारत के अल्पसंख्यक यूरोप की तरह जातीय या राष्ट्रीय अल्पसंख्यक नहीं, वे धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। जातीय दृष्टि से भारत में एक विचित्र मिश्रण है, पर जातीय सवाल भारत में न कभी उठे हैं न उठ सकते हैं। धर्म इन जातीय विभिन्नताओं के ऊपर है। जातियाँ या तो एक दूसरे में मिल जाती हैं या उनमें अंतर करना कठिन होता है। ज़ाहिर है कि धार्मिक दीवारें स्थायी नहीं होतीं और जो व्यक्ति अपना धर्म बदलता है उसकी जातीय पृष्ठभूमि या उसकी जातीय और भाषिक विरासत नष्ट नहीं हो जाती। परंतु राजनीतिक मामलों में, धर्म का स्थान सांप्रदायिकता ने ले लिया है। यह एक संकीर्ण समुदाय

जिन्ना और गांधी

© NCERT not to be republished

होता है जो मानसिक रूप से अपना आधार किसी धार्मिक वर्ग को बनाता है, किंतु वास्तव में उसकी दिलचस्पी राजनीतिक शक्ति और अपने समुदाय को बढ़ावा देने में होती है।

कांग्रेस सांप्रदायिक हल निकालने के लिए उत्सुक और चिंतित थी ताकि प्रगति के मार्ग की रुकावट को दूर किया जा सके। कांग्रेस की सदस्य-संख्या में मुख्य रूप से हिंदू थे, लेकिन उनमें बड़ी संख्या में मुसलमानों के अलावा दूसरे तमाम धर्मों के लोग जैसे सिख, ईसाई आदि भी शामिल थे। इसलिए राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना उसकी मजबूरी थी। उसके लिए सबसे बड़ी समस्या थी राष्ट्रीय स्वाधीनता और एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना। कांग्रेस निस्संदेह एका चाहती थी और उसे मानकर चलती थी, पर उसे ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता था जिसकी वजह से भारत के सांस्कृतिक जीवन की संपन्नता और विविधता को सिर्फ़ एक साँचे में कस दिया जाए। इसलिए काफ़ी दूर तक प्रादेशिक स्वायत्तता स्वीकार कर ली गई और विभिन्न समुदायों की स्वतंत्रता और सांस्कृतिक विकास की सुरक्षा के तरीकों पर भी सहमति हो गई। दो बुनियादी प्रश्नों पर कांग्रेस अडिग रही–राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र। आधी शताब्दी तक अपने विकास के समय वह इन पर बराबर बल देती रही।

गुज़रे ज़माने में, कम-से-कम सिद्धांत में, ब्रिटिश सरकार ने भी भारतीय एकता और लोकतंत्र का समर्थन किया था। लेकिन उसकी नीतियाँ हमें सीधे उस दिशा में ले गईं जहाँ इन दोनों का ही अस्वीकार था। अगस्त 1940 ई. में कांग्रेस ने मजबूर होकर घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश सरकार की नीति 'जनजीवन में संघर्ष और फूट को प्रत्यक्ष रूप से उकसाती और भड़काती है।' ब्रिटिश सरकार के ज़िम्मेदार लोग खुल्लमखुल्ला हमसे यह कहने लगे कि शायद किसी नयी व्यवस्था के पक्ष में भारत की एकता की बलि चढ़ानी पड़े और यह भी कि भारत के लिए लोकतंत्र ठीक नहीं हैं। हम सांप्रदायिक समस्या का कोई ऐसा हल न ढूँढ़ सके जो सब पार्टियों को मंज़ूर हो।

2018-19

यह साफ़ ज़ाहिर है कि भारत में बहुत से सामंती और प्रतिक्रियावादी समुदाय हैं, इनमें कुछ यहाँ की ज़मीन की उपज हैं और कुछ को जन्म देकर उनका पोषण अंग्रेज़ों ने किया है। संख्या की दृष्टि से वे भले ही कम हों, लेकिन उनके पास ब्रिटिश सत्ता की मदद है।

बीते हुए दिनों में अंग्रेज़ों की नीति मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा के मतभेदों को प्रोत्साहित करके उन पर बल देने की और सांप्रदायिक संगठनों को कांग्रेस के विरुद्ध महत्त्व देने की रही।

मिस्टर जिन्ना की माँग का आधार एक नया सिद्धांत था, जिसकी उन्होंने हाल ही में घोषणा की थी कि भारत में दो राष्ट्र हैं, हिंदू और मुसलमान। दो ही क्यों? मैं नहीं जानता, क्योंकि अगर राष्ट्रीयता का आधार धर्म है, तब तो भारत में बहुत से राष्ट्र हैं। यहाँ तक कहा जा सकता है कि अतीत में भारत का विकास एक बहुराष्ट्रीय राज्य के रूप में हुआ और उसमें राष्ट्रीय चेतना धीरे-धीरे आई।

मिस्टर जिन्ना के दो राष्ट्रों के सिद्धांत से पाकिस्तान का या भारत के विभाजन की अवधारणा का विकास हुआ। लेकिन उससे 'दो-राष्ट्रों' की समस्या का हल नहीं हुआ, क्योंकि वे तो पूरे देश में थे।

© NCERT not to be republished

अध्याय 8

तनाव

भारत में तनाव सन् 1942 के शुरू के महीनों में बढ़ा। युद्ध का मंच लगातार निकट आता जा रहा था और भारत के शहरों पर हवाई हमलों की संभावना पैदा हो गई थी। जिन पूर्वी देशों में युद्ध ज़ोरों पर था, वहाँ क्या होगा? भारत और इंग्लैंड के संबंधों में क्या नया अंतर आएगा?

चुनौती – 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव

बंबई में 7 और 8 अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने खुली सभा में उस प्रस्ताव पर विचार किया और बहस की जो अब 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव

'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान बंबई में औरतों का एक जुलूस

© NCERT not to be republished

नाम से जाना जाता है। वह एक लंबा और विशद प्रस्ताव था। उसमें अंतरिम सरकार बनाने का सुझाव दिया गया था। ऐसी सरकार जो मिली-जुली हो, जिसमें सभी महत्त्वपूर्ण वर्गों के लोगों का प्रतिनिधित्व हो और जिसका पहला काम होगा मित्र शक्तियों के सहयोग से भारत की सुरक्षा और अपनी सारी हथियारबंद और अहिंसक शक्तियों के साथ बाहरी हमले को रोकना।

कांग्रेस कमेटी ने 'संसार की आज़ादी के लिए ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र से फिर अपील की' और इस बात की स्वीकृति देना तय किया कि गांधी जी के अपरिहार्य नेतृत्व में अहिंसात्मक ढंग से एक जन-आंदोलन शुरू किया जाए। यह स्वीकृति उसी समय लागू होती जब गांधी जी ऐसा निर्णय लेते। अंत में कहा गया कि कमेटी 'कांग्रेस के लिए शक्ति हासिल करना नहीं चाहती। ताकत जब भी आएगी तो वह भारत की सारी जनता की होगी।'

अपने समापन भाषणों में कांग्रेस-सभापति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और गांधी जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनका अगला कदम होगा, ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि, वायसराय से मुलाकात करना और खास संयुक्त राष्ट्रों के मुख्याधिकारियों से एक सम्मानपूर्ण समझौते के लिए अपील करना।

8 अगस्त सन् 1942 को काफ़ी रात गए यह प्रस्ताव अंततः पास हो गया। कुछ घंटे बाद, 9 अगस्त की सुबह-सुबह बंबई में और पूरे देश में अनेक स्थानों पर बहुत सी गिरफ़्तारियाँ हुईं और इस तरह हम अहमदनगर के किले में आए।

© NCERT not to be republished
2018-19

अध्याय 9

दो पृष्ठभूमियाँ – भारतीय और अंग्रेज़ी

भारत में अगस्त सन् 1942 में जो कुछ हुआ, वह आकस्मिक नहीं था। वह पहले से जो बहुत कुछ होता आ रहा था उसकी चरम परिणति थी। इसके बारे में आक्षेप, आलोचना और सफ़ाई के रूप में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और बहुत सफ़ाई दी जा चुकी है। फिर भी इस लेखन में से असली बात गायब है, क्योंकि इनमें एक ऐसी चीज़ को केवल राजनीतिक पहलू से देखा गया है, जो राजनीति से कहीं अधिक गहरी थी। इन सबके पीछे वह तीव्र भावना बच रही थी कि चाहे कुछ हो जाए यह राज्य अब बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

व्यापक उथल-पुथल और उसका दमन

जनता की ओर से अकस्मात असंगठित प्रदर्शन और विस्फोट, जिनका अंत हिंसात्मक संघर्ष और तोड़-फोड़ में होता था, ज़बरदस्त और शक्तिशाली हथियारबंद सेनाओं के विरुद्ध भी लगातार चलते रहे। इनसे जनता की भावनाओं की तीव्रता का पता लगता है। यह भावना उनके नेताओं की गिरफ़्तारी से पहले भी थी लेकिन इन गिरफ़्तारियों और उसके बाद अक्सर होने वाले गोलीकांड ने जनता के क्रोध को भड़का दिया। वे इतने क्रुद्ध और उत्तेजित थे कि चुप नहीं बैठ सकते थे। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय नेता सामने आए और कुछ समय के लिए उनका अनुसरण किया गया। लेकिन उन्होंने भी जो निर्देश दिए वे काफ़ी नहीं थे। अपने मूल रूप में यह एक सहज जनांदोलन था। पूरे भारत में 1942 ई. में युवा पीढ़ी ने, विशेष रूप से विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों ने हिंसक और शांतिपूर्ण दोनों तरह की कार्यवाहियों में बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया।

© NCERT not to be republished

इस तरह 1857 के गदर के बाद, पहली बार, भारत में ब्रिटिश राज के ढाँचे को बलपूर्वक चुनौती देने के लिए (लेकिन यह बल निहत्था था) बहुत बड़ी जनसंख्या उठ खड़ी हुई। यह चुनौती मूर्खतापूर्ण और बेमौके थी क्योंकि दूसरी ओर सुसंगठित हथियारबंद सैनिक शक्ति थी। यह सैनिक शक्ति इतिहास में पहले किसी अवसर की तुलना में कहीं अधिक थी। उस भीड़ ने न तो इस द्वंद्व की तैयारी ही की थी और न ही इसके लिए समय का चुनाव खुद किया था। यह स्थिति उनके सामने अनजाने ही आ गई थी। तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में, भले ही वह प्रतिक्रिया नासमझी से भरी या गलत रही हो, लेकिन उससे भारत की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने प्रेम और विदेशी शासन के विरुद्ध अपनी घृणा को प्रकट किया।

सन् 1942 के दंगों में पुलिस और सेना की गोलीबारी से मारे गए और घायल हुए लोगों की संख्या के अनुमानित सरकारी आँकड़े के अनुसार 1,028 मरे और 3,200 घायल हुए। जनता के अंदाज़ के अनुसार मृतकों की संख्या 25,000 कही जाती है, पर यह संख्या भी संभवतः अतिरंजित है। शायद 10,000 की संख्या ज़्यादा सही होगी।

यह असाधारण बात थी कि कैसे बहुत से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन खत्म हो गया और उन हिस्सों पर 'दोबारा विजय पाने में' उसे कई दिन और कभी-कभी हफ़्ते लग गए। ऐसा विशेष रूप से बिहार में, बंगाल के मिदनापुर ज़िले में और संयुक्त-प्रांत के दक्षिण-पूर्वी ज़िलों में हुआ। यह बात ध्यान देने की है कि संयुक्त-प्रांत के बलिया ज़िले में (जिसे दोबारा जीतना पड़ा था) भीड़ के खिलाफ़ शारीरिक हिंसा या लोगों को चोट पहुँचाने की कोई गंभीर शिकायत नहीं है।

भारत की बीमारी – अकाल

भारत बहुत बीमार था, तन और मन दोनों से। जबकि लड़ाई में कुछ लोग बहुत फूले-फले थे, दूसरों पर बोझ चरम सीमा तक पहुँच गया था और इसकी भयानक स्मृति दिलाने के लिए अकाल पड़ा, दूर-दूर तक विस्तृत अकाल जिसका प्रभाव बंगाल और पूर्वी तथा दक्षिणी भारत पर पड़ा। ब्रिटिश

© NCERT not to be republished

शासन के पिछले 170 वर्षों में यह सबसे बड़ा और विनाशकारी था। इसकी तुलना 1766 ई. से 1770 ई. के दौरान बंगाल और बिहार के उन भयंकर अकालों से की जा सकती है जो ब्रिटिश शासन की स्थापना के आरंभिक परिणाम थे। इसके बाद महामारी फैली, विशेषकर हैज़ा और मलेरिया। वह दूसरे सूबों में भी फैल गई और आज भी हज़ारों की संख्या में लोग उसके शिकार हो रहे हैं।

इस अकाल ने, ऊपर के थोड़े से लोगों की खुशहाली के झीने आवरण के नीचे भारत की जो तसवीर थी, उसे उघाड़ कर रख दिया। यह तसवीर ब्रिटिश शासन की बदहाली और बदसूरती की तस्वीर थी।

जब यह सब घटित हो रहा था और कलकत्ता(कोलकाता) की सड़कों पर लाशें बिछी थीं, कलकत्ता के ऊपरी तबके के दस हज़ार लोगों के सामाजिक जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया था। नाच-गाने और दावतों में विलासिता का प्रदर्शन हो रहा था और जीवन उल्लास से भरा था।

अक्सर कहा जाता है कि भारत अंतर्विरोधों का देश है। कुछ लोग बहुत धनवान हैं और बहुत से लोग बहुत निर्धन हैं। यहाँ आधुनिकता भी है और मध्ययुगीनता भी। यहाँ शासक है और शासित हैं, ब्रिटिश हैं और भारतीय हैं। ये अंतर्विरोध सन् 1943 के उत्तरार्द्ध में अकाल के उन भयंकर दिनों में जैसे कलकत्ता शहर में दिखाई पड़े, वैसे पहले कभी नज़र नहीं आए थे। अकाल की गहरी वजह उस बुनियादी नीति में थी जो भारत को दिनोदिन गरीब बनाती जा रही थी और जिसके कारण लाखों लोग भुखमरी का जीवन जी रहे थे।

भारत में ब्रिटिश शासन पर बंगाल की भयंकर बर्बादी ने और उड़ीसा, मालाबार एवं दूसरे स्थानों पर पड़ने वाले अकाल ने आखिरी फ़ैसला दे दिया। पर जब वे जाएँगे, तो वे क्या छोड़ेंगे—तीन वर्ष पहले मृत्यु-शय्या पर पड़े टैगोर के सामने यह चित्र उभरा था—"लेकिन वे कैसा भारत छोड़ेंगे? कितनी नग्न दुर्गति? अंत में उनके सदियों पुराने प्रशासन की धारा सूख जाएगी तो वे अपने पीछे कितनी कीचड़ और कचरा छोड़ेंगे?"

2018-19

भारत की सजीव सामर्थ्य

अकाल और युद्ध के बावजूद, प्रकृति अपना कायाकल्प करती है और कल के लड़ाई के मैदान को आज फूलों और हरी घास से ढक देती हैं। मनुष्य के पास स्मृति का विलक्षण गुण होता है। वह कहानियों और यादों से निर्मित अतीत में बसता है। यह वर्तमान, इससे पहले कि हमें उसका बोध हो, अतीत में खिसक जाता है। आज, जो बीते हुए कल की संतान है, खुद अपनी जगह अपनी संतान, आने वाले कल को दे जाता है। कमज़ोर आत्मा वाले समर्पण कर देते हैं और वे हटा दिए जाते हैं, लेकिन बाकी लोग मशाल को आगे ले चलते हैं और आने वाले कल के मार्ग-दर्शकों को सौंप देते हैं।

© NCERT not to be republished

उपसंहार

भारत की खोज – मैंने क्या खोजा, क्या पाया है? यह कल्पना करना कि मैं उसका परदा हटाकर यह देख सकूँगा कि वह अपने वर्तमान रूप में क्या है और उसका लंबा अतीत क्या रहा होगा, मेरी अनधिकार चेष्टा थी। भारत एक भौगोलिक और आर्थिक सत्ता है, उसकी विभिन्नता में सांस्कृतिक एकता है। यह विरुद्धों का एक ऐसा पुंज है जो मज़बूत और अदृश्य सूत्रों से बँधा है। बार-बार आक्रमणों के बावजूद उसकी आत्मा कभी जीती नहीं जा सकी और आज भी जब वह एक अहंकारी विजेता का खिलौना मालूम होता है, वह अपराजेय है। एक युग के बाद दूसरे युग में उसने महान स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है जो पुरानी परंपरा को लेकर चले हैं और उसे बदलते हुए समय के अनुरूप ढालते भी रहे हैं। उस महान परंपरा में रवींद्रनाथ टैगोर हुए जो आधुनिक युग की प्रकृति और प्रवृत्तियों से सराबोर थे लेकिन उनकी नींव भारत के अतीत में थी।

जवाहरलाल नेहरू

ऐसा लगता है जैसे पुराना जादू अब टूट रहा है और वह (भारत) चारों ओर देखता हुआ वर्तमान के प्रति जागरूक हो रहा है। उसमें परिवर्तन होगा और यह परिवर्तन ज़रूरी है।

© NCERT not to be republished

फिर भी वह पुराना सम्मोहन बना रहेगा और उसकी जनता के हृदयों को बाँधे रखेगा।

हमें भारत में अतीत और सुदूर की खोज में देश के बाहर नहीं जाना है। हमारे अपने पास उसकी बहुतायत है। अगर हम विदेशों में जाते हैं तो केवल वर्तमान की तलाश में। यह तलाश ज़रूरी है, क्योंकि उससे अलग रहने का अर्थ है पिछड़ापन और क्षय। जीवन अधिक अंतरराष्ट्रीय होता जा रहा है। इस आने वाले अंतरराष्ट्रीयतावाद में हमें अपनी भूमिका निभानी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें यात्राएँ करनी हैं, औरों से मिलना है, उनसे सीखना है और उन्हें समझना है लेकिन सच्ची अंतरराष्ट्रीयता कोई ऐसी हवाई चीज़ नहीं है जिसकी न कोई बुनियाद हो और न लंगरगाह। उसे (अंतरराष्ट्रीयतावाद को) राष्ट्रीय संस्कृतियों से बाहर निकलना है और आज वह स्वतंत्रता, समानता और सच्ची अंतरराष्ट्रीयता के आधार पर ही उन्नति कर सकता है।

हम किसी मामूली देश के नागरिक नहीं हैं। हमें जन्मभूमि पर, अपने देशवासियों पर, अपनी संस्कृति और परंपराओं पर गर्व है। यह गर्व किसी ऐसे रोमांचक अतीत के लिए नहीं होना चाहिए जिससे हम चिपटे रहना चाहते हैं, न ही अपने ढंग से भिन्न औरों के ढंग को समझने में इससे कोई कठिनाई होनी चाहिए। इसके कारण हमें अपनी कमज़ोरियों और असफलताओं को भी कभी नहीं भूलना चाहिए और न ही उनसे छुटकारा पाने की हमारी इच्छा कुंठित होनी चाहिए। इससे पहले कि हम मानवीय सभ्यता और प्रगति की गाड़ी में औरों के साथ अपनी सही जगह ले सकें, हमें अभी बहुत लंबा सफ़र तय करना है और बहुत-सी कमी को पूरा करना है। हमें जल्दी करनी है, क्योंकि हमारे पास समय सीमित है और दुनिया की रफ़्तार लगातार तेज़ी से बढ़ती जा रही है। अतीत में भारत दूसरी संस्कृतियों का स्वागत करके उन्हें आत्मसात कर लेता था। आज इस बात की कहीं अधिक आवश्यकता है, क्योंकि हम भविष्य की उस 'एक दुनिया' की तरफ़ बढ़ रहे हैं जहाँ राष्ट्रीय संस्कृतियाँ मानव जाति की अंतरराष्ट्रीय संस्कृति में घुलमिल जाएँगी। हमें जहाँ भी समझदारी, ज्ञान, मित्रता और सहयोग मिलेगा हम वहीं उसकी तलाश करेंगे और हम सामूहिक कामों में सबके साथ सहयोग करेंगे, लेकिन हम दूसरों की कृपा और सहारे के प्रार्थी नहीं हैं। इस तरह हम सच्चे भारतीय और एशियाई होंगे और साथ ही अच्छे अंतरराष्ट्रीयतावादी और विश्व नागरिक होंगे।

© NCERT not to be republished

प्रश्न-अभ्यास

1. 'आखिर यह भारत है क्या? अतीत में यह किस विशेषता का प्रतिनिधित्व करता था? उसने अपनी प्राचीन शक्ति को कैसे खो दिया? क्या उसने इस शक्ति को पूरी तरह खो दिया है? विशाल जनसंख्या का बसेरा होने के अलावा क्या आज उसके पास ऐसा कुछ बचा है जिसे जानदार कहा जा सके?'

   ये प्रश्न अध्याय दो के शुरुआती हिस्से से लिए गए हैं। अब तक आप पूरी पुस्तक पढ़ चुके होंगे। आपके विचार से इन प्रश्नों के क्या उत्तर हो सकते हैं? जो कुछ आपने पढ़ा है उसके आधार पर और अपने अनुभवों के आधार पर बताइए।

2. आपके अनुसार भारत यूरोप की तुलना में तकनीकी-विकास की दौड़ में क्यों पिछड़ गया था?

3. नेहरू जी ने कहा कि – "मेरे खयाल से, हम सब के मन में अपनी मातृभूमि की अलग-अलग तसवीरें हैं और कोई दो आदमी बिलकुल एक जैसा नहीं सोच सकते।" अब आप बताइए कि–

   (क) आपके मन में अपनी मातृभूमि की कैसी तसवीर है?

   (ख) अपने साथियों से चर्चा करके पता करो कि उनकी मातृभूमि की तसवीर कैसी है और आपकी और उनकी तसवीर (मातृभूमि की छवि) में क्या समानताएँ और भिन्नताएँ हैं?

4. जवाहरलाल नेहरू ने कहा, "यह बात दिलचस्प है कि भारत अपनी कहानी की इस भोर-बेला में ही हमें एक नन्हें बच्चे की तरह नहीं, बल्कि अनेक रूपों में विकसित सयाने रूप में दिखाई पड़ता है।" उन्होंने भारत के विषय में ऐसा क्यों और किस संदर्भ में कहा है?

© NCERT not to be republished

5. सिंधु घाटी सभ्यता के अंत के बारे में अनेक विद्वानों के कई मत हैं। आपके अनुसार इस सभ्यता का अंत कैसे हुआ होगा, तर्क सहित लिखिए।

6. उपनिषदों में बार-बार कहा गया है कि – "शरीर स्वस्थ हो, मन स्वच्छ हो और तन-मन दोनों अनुशासन में रहें।" आप अपने दैनिक क्रिया-कलापों में इसे कितना लागू कर पाते हैं? लिखिए।

7. नेहरू जी ने कहा कि – "इतिहास की उपेक्षा के परिणाम अच्छे नहीं हुए।" आपके अनुसार इतिहास लेखन में क्या-क्या शामिल किया जाना चाहिए है? एक सूची बनाइए और उस पर कक्षा में अपने साथियों और अध्यापकों से चर्चा कीजिए।

8. "हमें आरंभ में ही एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति की शुरुआत दिखाई पड़ती है जो तमाम परिवर्तनों के बावजूद आज भी बनी हुई है।"
आज की भारतीय संस्कृति की ऐसी कौन-कौन सी बातें/चीज़ें हैं जो हज़ारों साल पहले से चली आ रही हैं? आपस में चर्चा करके पता लगाइए।

9. आपने पिछले साल (सातवीं कक्षा में) *बाल महाभारत कथा* पढ़ी। *भारत की खोज* में भी *महाभारत* के सार को सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया गया है–"दूसरों के साथ ऐसा आचरण नहीं करो जो तुम्हें खुद अपने लिए स्वीकार्य न हो।" आप अपने साथियों से कैसे व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और स्वयं उनके प्रति कैसा व्यवहार करते हैं? चर्चा कीजिए।

10. प्राचीन काल से लेकर आज तक राजा या सरकार द्वारा ज़मीन और उत्पादन पर 'कर' (tax) लगाया जाता रहा है। आजकल हम किन-किन वस्तुओं और सेवाओं पर कर देते हैं, सूची बनाइए।

11. (क) प्राचीन समय में विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रभाव के दो उदाहरण बताइए।

(ख) वर्तमान समय में विदेशों में भारतीय संस्कृति के कौन-कौन से प्रभाव देखे जा सकते हैं? अपने साथियों के साथ मिलकर एक सूची बनाइए। (***संकेत*** – खान-पान, पहनावा, फिल्में, हिंदी, कंप्यूटर, टेलीमार्केटिंग आदि।)

2018-19

not to be republished © NCERT

12. पृष्ठ संख्या 34 पर कहा गया है कि जातकों में सौदागरों की समुद्री यात्राओं/ यातायात के हवाले भरे हुए हैं। विश्व/भारत के मानचित्र में उन स्थानों/ रास्तों को खोजिए जिनकी चर्चा इस पृष्ठ पर की गई है।

13. कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में अनेक विषयों की चर्चा है, जैसे, "व्यापार और वाणिज्य, कानून और न्यायालय, नगर-व्यवस्था, सामाजिक रीति-रिवाज, विवाह और तलाक, स्त्रियों के अधिकार, कर और लगान, कृषि, खानों और कारखानों को चलाना, दस्तकारी, मंडियाँ, बागवानी, उद्योग-धंधे, सिंचाई और जलमार्ग, जहाज़ और जहाज़रानी, निगमें, जन-गणना, मत्स्य-उद्योग, कसाई खाने, पासपोर्ट और जेल-सब शामिल हैं। इसमें विधवा विवाह को मान्यता दी गई है और विशेष परिस्थितियों में तलाक को भी।" वर्तमान में इन विषयों की क्या स्थिति है? अपनी पसंद के किन्हीं दो-तीन विषयों पर लिखिए।

14. आज़ादी से पहले किसानों की समस्याएँ निम्नलिखित थीं-"गरीबी, कर्ज़ , निहित स्वार्थ, ज़मींदार, महाजन, भारी लगान और कर, पुलिस के अत्याचार..." आपके विचार से आजकल किसानों की समस्याएँ कौन-कौन सी हैं?

15. "सार्वजनिक काम राजा की मर्ज़ी के मोहताज नहीं होते, उसे खुद हमेशा इनके लिए तैयार रहना चाहिए।" ऐसे कौन-कौन से सार्वजनिक कार्य हैं जिन्हें आप बिना किसी हिचकिचाहट के करने को तैयार हो जाते हैं?

16. महान सम्राट अशोक ने घोषणा की कि वह प्रजा के कार्य और हित के लिए 'हर स्थान पर और हर समय' हमेशा उपलब्ध हैं। हमारे समय के शासक/ लोक-सेवक इस कसौटी पर कितना खरा उतरते हैं? तर्क सहित लिखिए।

17. 'औरतों के परदे में अलग-थलग रहने से सामाजिक जीवन के विकास में रुकावट आई।' कैसे?

18. मध्यकाल के इन संत रचनाकारों की अनेक रचनाएँ अब तक आप पढ़ चुके होंगे। इन रचनाकारों की एक-एक रचना अपनी पसंद से लिखिए-

(क) अमीर खुसरो (ख) कबीर (ग) गुरु नानक (घ) रहीम

© NCERT not to be republished

19. बात को कहने के तीन प्रमुख तरीके अब तक आप जान चुके होंगे–

(क) अभिधा (ख) लक्षणा (ग) व्यंजना

बताइए, नेहरू जी का निम्नलिखित वाक्य इन तीनों में से किसका उदाहरण है? यह भी बताइए कि आपको ऐसा क्यों लगता है?

"यदि ब्रिटेन ने भारत में यह बहुत भारी बोझ नहीं उठाया होता (जैसा कि उन्होंने हमें बताया है) और लंबे समय तक हमें स्वराज्य करने की वह कठिन कला नहीं सिखाई होती, जिससे हम इतने अनजान थे, तो भारत न केवल अधिक स्वतंत्र और अधिक समृद्ध होता.... बल्कि उसने कहीं अधिक प्रगति की होती।"

20. "नयी ताकतों ने सिर उठाया और वे हमें ग्रामीण जनता की ओर ले गईं। पहली बार एक नया और दूसरे ढंग का भारत उन युवा बुद्धिजीवियों के सामने आया..."

आपके विचार से आज़ादी की लड़ाई के बारे में कही गई ये बातें किस 'नयी ताकत' की ओर इशारा कर रही हैं? वह कौन व्यक्ति था और उसने ऐसा क्या किया जिसने ग्रामीण जनता को भी आज़ादी की लड़ाई का सिपाही बना दिया?

21. 'भारत माता की जय' – आपके विचार से इस नारे में किसकी जय की बात कही जाती है? अपने उत्तर का कारण भी बताइए।

22. (क) भारत पर प्राचीन काल से ही अनेक विदेशी आक्रमण होते रहे। उनकी सूची बनाइए। समय क्रम में बनाएँ तो और भी अच्छा रहेगा।

(ख) आपके विचार से भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना इससे पहले के आक्रमणों से किस तरह अलग है?

23. (क) अंग्रेज़ी सरकार शिक्षा के प्रसार को नापसंद करती थी। क्यों?

(ख) शिक्षा के प्रसार को नापसंद करने के बावजूद अंग्रेज़ी सरकार को शिक्षा के बारे में थोड़ा-बहुत काम करना पड़ा। क्यों?

24. ब्रिटिश शासन के दौर के लिए कहा गया कि–"नया पूँजीवाद सारे विश्व में जो बाज़ार तैयार कर रहा था उससे हर सूरत में भारत के आर्थिक ढाँचे पर प्रभाव पड़ना ही था।" क्या आपको लगता है कि अब भी नया पूँजीवाद पूरे विश्व में जो बाज़ार तैयार कर रहा है, उससे भारत के आर्थिक ढाँचे पर प्रभाव पड़ रहा है? कैसे?

© NCERT not to be republished

2018-19

25. गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर निम्नलिखित में किस तरह का बदलाव आया, पता कीजिए–

(क) कांग्रेस संगठन में।

(ख) लोगों में – विद्यार्थियों, स्त्रियों, उद्योगपतियों आदि में।

(ग) आज़ादी की लड़ाई के तरीकों में।

(घ) साहित्य, संस्कृति, अखबार आदि में।

26. "अक्सर कहा जाता है कि भारत अंतर्विरोधों का देश है।" आपके विचार से भारत में किस-किस तरह के अंतर्विरोध हैं? कक्षा में समूह बनाकर चर्चा कीजिए। (***संकेत*** अमीरी-गरीबी, आधुनिकता-मध्ययुगीनता, सुविधा-संपन्न-सुविधा विहीन आदि)

27. पृष्ठ संख्या 122 पर नेहरू जी ने कहा है कि–"हम भविष्य की उस 'एक दुनिया' की तरफ़ बढ़ रहे हैं जहाँ राष्ट्रीय संस्कृतियाँ मानव जाति की अंतरराष्ट्रीय संस्कृति में घुलमिल जाएँगी।" आपके अनुसार उस 'एक दुनिया' में क्या-क्या अच्छा है और कैसे-कैसे खतरे हो सकते हैं?

© NCERT not to be republished

2018-19

टिप्पणी

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT not to be republished

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

सहचर – साथ चलने या रहने वाला, साथी, अनुचर, सेवक

दुरभिसंधि – बुरे उद्देश्य से की गई गुप्त मंत्रणा, कुचक्र

गेटे – विश्वविख्यात जर्मन कवि, उपन्यासकार, नाटककार, दार्शनिक एवं कूटनीतिज्ञ

अभिभूत – वश में किया हुआ, आक्रांत, पीड़ित, पराजित

यंत्रणा– यातना, पीड़ा, क्लेश

हैरतअंगेज़– विस्मयजनक

दंतकथा – किवदंती, जनश्रुति

मिथक – प्राचीन पुराकथाओं का तत्व जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ का वहन करे

भग्नावशेष – खंडहर

भित्तिचित्र – दीवार पर बना हुआ चित्र

अभिलिखित – लिखा या खोदा हुआ, नियमित रूप से लिखकर सुरक्षित रखा हुआ, अभिलेख के रूप में लाया हुआ

भाष्यकार – मूल ग्रंथ की व्याख्या करने वाला, भाष्य लिखनेवाला

सामंजस्य – संगति, अनुकूलता, विषमता न होना, मेल

शाश्वत – नित्य, निरंतर, सतत, स्थायी

निरंतरता –लगातार, बराबर, सर्वदा

विलक्षणता – अलौकिक, असाधारण, भिन्न चिह्नों वाला, जिसमें कोई विशेष लक्षण न हो, वह अवस्था जिसका कोई कारण न हो

सार्थक – अर्थपूर्ण, उपयोगी, लाभदायक, महत्त्वपूर्ण

अनिष्टकर – हानिकारक

पुरागाथा – प्राचीन प्रशंसा गीत या कथाएँ

सीमांत – सीमावर्ती स्थान

मानकीकरण – किसी वस्तु के उत्पादन, निर्माण आदि का ऐसा रूप स्थिर करना जिससे उसकी अच्छाई या शुद्धता आदि के संबंध में संदेह की जगह न रह जाए

अवयव – शरीर या शरीर का कोई भाग(हाथ–पाँव आदि), अंग

अवसाद – सुस्ती, शिथिलता, उदासी

उद्घाटित – खोला, उघाड़ा हुआ

नवागंतुक – नया अतिथि, अजनबी

© NCERT not to be republished

कबीले – कुल, वंश, जंगली आदमियों का व्यक्ति विशेष को नेता या सरदार मानने वाला समूह

मैक्समूलर – जर्मनी में जन्मे प्राच्य विधा विशेषज्ञ जिसने प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों के अनुवाद-संपादन का कार्य किया

हर्षोन्माद – हर्ष में सुध-बुध खो देना

भौतिकवाद – (मैटीरियालिज़्म)पंचभूत निर्मित यह संसार ही सत्य है–यह सिद्धांत प्रतिपादित करने वाला मत

अवेस्ता – फ़ारसी भाषा में इसका अर्थ 'प्रार्थना' है। अवेस्ता जरथुष्ट्र धर्म की प्राथमिक रचना है

ब्राह्मी – वह प्राचीन लिपि जिससे देवनागरी और अन्य आधुनिक भारतीय लिपियों की उत्पत्ति हुई

खरोष्टी (खरोष्ठी) – एक प्राचीन लिपि जो फ़ारसी की तरह दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी और मौर्यकाल में पश्चिमोत्तर भारत में चलती थी।

पर्सिपोलिस – प्राचीन काल के शक्तिशाली पारसिक साम्राज्य की राजधानी जो आधुनिक ईरान में स्थित है

एच. जी. वेल्स – विज्ञान-कथा उपन्यासों के प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक। इन्हें ऐसे उपन्यासों का पिता भी कहा जाता है।

ऑक्सस (अक्षु) नदी – अमूदरिया के नाम से भी प्रसिद्ध यह नदी दक्षिण-पश्चिम एशिया की सबसे लंबी नदी है। यह नदी अफ़गानिस्तान, तज़ाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान व उज़्बेकिस्तान जैसे देशों में बहती है।

यूइ-चियों – यूची मध्य एशिया के हरित मैदानों के खानाबदोश लोग थे जो चीन के पड़ोस में रहते थे। भारत में शासन करने वाले कुषाण यूइ-चियों के ही एक कुल से संबंधित थे।

ज़रथुष्ट्र धर्म - इसे पारसी धर्म के नाम से भी जाना जाता है। ईरान में उद्‌भूत इस धर्म के पैगंबर जरथुष्ट्र थे।

गोबी रेगिस्तान – एशिया का सबसे बड़ा रेगिस्तान जो चीन और मंगोलिया में फैला हुआ है।

जावा और बाली – जावा और बाली इंडोनेशिया के द्वीप हैं। जावा में प्राचीन काल में हिंदू राज्य था। बाली भी हिंदू संस्कृति का केंद्र था।

अंगकोर और बोरोबुदुर – कंपूचिया में अंकोरवाट का हिंदू मन्दिर और बोरोबुदुर में विश्व का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर है। ये दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव के सुंदर उदाहरण हैं।

मलय प्रायद्वीप – (मलाया) बर्मा के दक्षिण में स्थित एक प्रायद्वीप

चंपा – आधुनिक उत्तरी वियतनाम की सीमा-पट्टी सहित दक्षिणी वियतनाम में प्राचीन काल में चंपा राज्य था। चंपा का राजा शैव था और वहाँ की राजकीय भाषा संस्कृत थी।

2018-19

श्रीविजय– श्रीविजय राज्य दक्षिण-पूर्व एशिया का प्राचीन काल का महत्त्वपूर्ण राज्य था। इसमें मलय प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा भी शामिल थे।

निरभ्र – जिसमें बादल न हों, मेघ रहित

आसव – मद्य, रस, पुष्परस, फलादि के खमीर से तैयार किया हुआ अर्क

भस्म – चिता की राख, दवा के काम के लिए फूँकी हुई धातु आदि

हार्वे – विलियम हार्वे ब्रिटिश चिकित्साशास्त्री और शरीर क्रिया वैज्ञानिक थे। इनकी रुधिर परिसंचरण की खोज ने चिकित्साशास्त्र को नया आयाम दिया।

भेषज – दवा, उपचार, आरोग्य लाभ कराने वाला

खगोलशास्त्र – आकाशीय नक्षत्रों, ग्रहों आदि का वर्णन करने वाला विज्ञान

राष्ट्रकूट – क्षत्रिय राजवंश, राठौर

गाथिक कला (यूरोप) – स्थापत्य कला की एक शैली जिसका उद्गम 12वीं सदी के मध्य फ्रांस में हुआ और 16वीं सदी के मध्य तक पश्चिमी यूरोप में विद्यमान थी।

अधिराज – सम्राट

कुस्तुंतुनिया – मध्यकाल में तुर्की साम्राज्य की राजधानी

रोम्यां रोला – प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक और नाटककार, महात्मा गांधी के जीवनी लेखक

सर्वग्रासी – सब खा जाने वाला, खग्रास ग्रहण

सर्वव्यापी – सर्वव्यापक, सभी जगह व्याप्त

ऊर्जा – बल, कार्य करने की क्षमता, उत्साह

आह्वान – पुकारना, बुलाना, ललकार

अल्पसंख्यक – कम जनसंख्या वाला (समुदाय)

अभिशाप – शाप, किसी का बुरा मनाना, लांछन, मिथ्या आरोप, बुराई

निष्क्रिय – कोई काम-धाम न करने वाला, जो कुछ भी न करे-धरे, जिसमें या जिससे कार्य या व्यापार न हो, क्रियारहित

निवृत्तिमार्गी – मोक्ष या मुक्ति के मार्ग पर चलने वाला

विरासत – उत्तराधिकार में मिलनेवाना माल

सविनय अवज्ञा आंदोलन – अन्यायपूर्ण सरकारी कानून की नम्रतापूर्वक अवमानना के लिए आंदोलन

संरक्षण – रक्षा करने की क्रिया , हिफ़ाज़त

मित्र शक्तियाँ – द्वितीय विश्वयुद्ध में धुरी-राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ने वाले देशों का समूह। ब्रिटेन फ्रांस, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका इस समूह के बड़े देश थे।

कायाकल्प – शरीर का नया या जवान हो जाना, चोला बदल जाना

लंगरगाह – लंगर करने, जहाज़ों के ठहरने का स्थान

कुंठित – कुंद या भोथरा किया हुआ, निराश

© NCERT not to be republished

2018-19